

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182582

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP-67-11-1-68-5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.08
N 23 P

Accession No. H 1014

Author नरोत्तमदास , स्वामी . Comp.

Title पद्यकल्पद्रुम .

This book should be returned on or before the date last marked below.

पद्य-कल्पद्रुम

हिन्दीके प्राचीन और अर्वाचीन प्रमुख कवियोंकी
कविताओंका सङ्कलन

संकलन-कर्ता—

नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०, विशारद

गयाप्रसाद एंड संस

पुस्तक-प्रकाशक और विक्रेता

आगरा



मुद्रक—

जगदीशप्रसाद अग्रवाल, बी. कॉम.,
दी एज्यूकेशनल प्रेस,
आगरा ।



निवेदन

यह संकलन हिन्दी-साहित्यके प्रारम्भिक विद्यार्थियोंके लिए प्रस्तुत किया गया है। इसमें हिन्दीके बीस प्रमुख और प्रतिनिधि-कवियोंकी कविताओंका संग्रह है। संकलन करनेमें निम्नलिखित बातें दृष्टिमें रखी गई हैं:—

- (१) कविताओं का विषय किशोर अवस्थाके कोमल-बुद्धि बालकोंके लिए सर्वथा उपयुक्त हो। वह ऐसा हो कि जो उनके लिए स्फूर्तिदायक (inspiring) और नवजीवनका संचारक हो।
- (२) कविताएँ ऐसी हों, जो छात्रोंकी साहित्य में रुचि उत्पन्न करें और उनकी विचार-शक्ति का विकास करनेमें सहायक हों।
- (३) हिन्दी के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओंके नमूने इस संकलनमें आ जायँ, जिससे छात्र भिन्न-भिन्न प्रकारकी शैलियोंसे परिचित हो जायँ; पर साथ ही ध्यान रखा गया है कि अनुचित शृङ्गारात्मक कविताएँ न आने पावें।
- (४) प्रत्येक कविकी अच्छी-से-अच्छी कविता दी जावे; पर यह ध्यान रहते हुए कि यह सङ्कलन जिन छात्रोंके लिए तय्यार किया गया है, उनके लिए कठिन न हो जाय।
- (५) अर्वाचीन कवियों पर विशेष ध्यान दिया जाय और आधुनिक नवीन कवियोंको भी समुचित स्थान दिया जाय।

जाय, जिससे विद्यार्थी अपने समयके कवियोंसे अपरिचित न रहें और वे अपने समय तककी हिन्दी-कविताकी प्रगतिको भली-भाँति हृदयङ्गम कर सकें ।

(६) छात्र प्रत्येक कवि और उसकी शैलीसे भी भली-भाँति परिचित हों ; इसलिए कविताके आरम्भमें कविका संचिप्त परिचय दिया गया है, जिसमें केवल जीवनीपर ही सन्तोष न करके कविता-गत विशेषताओंका उल्लेख भी किया गया है ।

आरम्भमें हिन्दी-भाषा और साहित्यका संचिप्त ऐतिहासिक विवेचन दिया है । कविताएँ काल-क्रमसे दी गई हैं । सङ्कलनके पूर्वाद्धमें पूर्व-माध्यमिक-कालके छः और उत्तर-माध्यमिक-कालके दो, इस प्रकार कुल आठ कवियोंको रखा गया है । उत्तराद्धमें अर्वाचीन कालके बारह कवि हैं, जिनमें एक स्त्री-कवि भी है ।

परिशिष्टमें रस, अलङ्कार, छन्द तथा इनका संचिप्त निरूपण किया गया है ; क्योंकि हिन्दी-कविताके सुचारु अध्ययन के लिए इतना ज्ञान बहुत आवश्यक है । अन्तमें कतिपय कठिन शब्दोंका अर्थ तथा दुर्बोध स्थलोंका स्पष्टीकरण करनेवाली टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं ।

अजमेरके गवर्नमेंट-कॉलेजके प्रोफेसर श्रीयुत देवकीनन्दन शर्मा, एम० ए०, एल-एल० बी० महोदयने हस्तलिखित कापीको मनोयोग-पूर्वक पढ़कर और कई उपयोगी सूचनाएँ देकर मुझे अनुगृहीत किया है ।

—नरोत्तमदास स्वामी

कृतज्ञता-प्रकाशन

निम्नलिखित महानुभावों, लेखकों और प्रकाशकोंने इस सङ्कलनमें अपनी-अपनी कविताओंको संगृहीत करनेकी सहर्ष आज्ञा-प्रदान की है, जिसके लिए मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ:—

श्री श्रीधर पाठक, श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०, श्री-जयशंकर 'प्रसाद', श्री रामनरेश त्रिपाठी, श्री ठा० गोपालशरण-सिंह, श्री सुमित्रानन्दन पन्त, खड्गविलास प्रेस बाँकीपर, नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी, साहित्य-सदन चिरगाँव, भारती-भंडार काशी, हिन्दी-पुस्तक-भंडार लहरियासराय, ओम्नाबन्धु-आश्रम प्रयाग।

—सम्पादक

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना	...	...	...	१
पूर्वार्द्ध—प्राचीन कवि				
(१) कबीरदास	...	...		६
साखी			११	
(२) सूरदास			...	१४
बालकृष्ण	...	...	१५	
गोपी-विरह	...		१६	
अन्य पद	...	...	२१	
(३) मलिक मुहम्मद जायसी		...	...	२२
गोराकी वीर-गति	...	...	२३	
(४) गोस्वामी तुलसीदास		...	...	२७
राम का वन-गमन		...	२६	
राम-वनवास	...	...	४२	
चातक-प्रेम-वर्णन	...	...	४५	
(५) मीराँबाई		...	...	४७
पद	...	...	४८	
(६) नरोत्तमदास	...	...	...	५१
सुदामा-चरित्र	...	...	५२	
(७) बिहारीलाल	...	...	...	६०
दोहे	...	...	६१	

(८) भूषण	...	...	...	६५
शिवाजीकी प्रशंसा	...	...	...	६६
छत्रसालकी प्रशंसा	...	...	...	७०

उत्तरार्द्ध—अर्वाचीन कवि

(९) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	...	...	...	७१
यमुना-छवि-वर्णन	...	...	...	७३
(१०) श्रीधर पाठक	...	...	...	७६
हिमालय-वर्णन	...	...	...	७७
(११) अयोध्यासिंह उपाध्याय	...	...	...	८०
यशोदा-विलाप	...	...	...	८१
भेदकी बातें	...	...	...	८८
(१२) जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	...	...	...	९१
गंगावतरण	...	...	...	९२
(१३) रामचन्द्र शुक्ल	...	...	...	९८
भगवान् बुद्धकी हंस-रत्ना	...	...	...	९९
(१४) मैथिलीशरण गुप्त	...	...	...	१०३
पंचवटीमें लक्ष्मण	...	...	...	१०४
(१५) जयशंकर 'प्रसाद'	...	...	...	११४
चित्रकूटमें श्रीराम	...	...	...	११५
भारत-गीत	...	...	...	११७
(१६) रामनरेश त्रिपाठी	...	...	...	१२०
स्वदेश-प्रेम	...	...	...	१२१

(१७) गोपालशरणसिंह		...	...	१२४
आगमन	...		...	१२४
स्वागत	...	...	...	१२५
वह छवि	...	...	...	१२६
अचरज			...	१२७
(१८) सियारामशरण गुप्त	...	...	...	१२८
एक फूलकी चाह		...	...	१२९
(१९) सुमित्रानन्दन पन्त	...	...	...	१४१
बादल	...	...	...	१४२
(२०) सुभद्राकुमारी चौहान	...	...	...	१४५
मेरा नया बचपन	...	...	...	१४६
बालिका का परिचय	...	...	...	१४७
परिशिष्ट	...		...	१४९
(१) रस-निरूपण		...	...	१४९
(२) अलंकार-निरूपण	...	...	...	१६०
(३) छन्द-निरूपण	...	...	...	१७६
टिप्पणी	...	...	...	१८६

प्रस्तावना

हिन्दी-भाषा और साहित्यका संक्षिप्त ऐतिहासिक विवेचन

हिन्दी-भाषा बंगाल और पञ्जाब तथा हिमालय-पर्वतमाला और विन्ध्याचल-पर्वतमालाके बीचके विस्तृत भूभागमें बोली जाती है। इसके कई बड़े विभाग हैं। जिस बोलीको पढ़ा-लिखा शिष्ट समाज काममें लाता है और जिसमें अधिकांश साहित्य लिखा जाता है, वह खड़ी-बोली कहलाती है। उर्दू खड़ी-बोलीकी ही एक शाखा है, जिसमें अरबी-फारसी शब्दोंका बाहुल्य रहता है। हिन्दीकी अन्य शाखाएँ राजस्थानी, ब्रज, पहाड़ी, अवधी और बिहारी हैं। साहित्यकी दृष्टिसे राजस्थानी, ब्रज और अवधी विशेष महत्त्व-पूर्ण हैं।

राजस्थानी, राजस्थान तथा मालवामें बोली जाती है। इसका प्राचीन साहित्य बहुत विस्तृत है। चन्द और मीराबाई इसके प्रसिद्ध कवि हुए हैं। कबीरकी भाषामें राजस्थानीका बहुत मिश्रण है। राजस्थानीका साहित्य मुख्यतया वीर एवं भक्ति-रसात्मक है।

ब्रज-भाषा मथुरा एवं आगराके आस-पासके भूखण्डमें बोली जाती है। इसका प्राचीन साहित्य बहुत महत्त्व-पूर्ण है। वैष्णव-सम्प्रदायके कविजनोंने इसको अपनाकर इसका खूब प्रचार किया, एवं अल्पकालमें ही इसने हिन्दी-साहित्यमें एकाधिपत्य जमा लिया। सूरदास, हित हरिवंश, नन्ददास, नरोत्तमदास, गङ्ग, केशवदास, बिहारीलाल, मतिराम, भूषण, देव, पद्माकर आदि महाकवियोंने अपनी सुमधुर कविताकी रचना इसी भाषामें की।

गोस्वामी तुलसीदास अवधवासी थे और उन्होंने अपना राम-चरितमानस अवधीमें लिखा ; पर उनकी अन्य सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ, जैसे विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली आदि ब्रज-भाषामें ही लिखी गई हैं। वर्तमान शताब्दीमें खड़ी-बोलीका प्राधान्य बढ़ा, पर ब्रज-भाषाकी महत्ता कम नहीं होने पाई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अधिकांश कविता ब्रज-भाषामें ही लिखी। उनके पीछे श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न और जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ब्रज-भाषाके अच्छे कवि हुए। आजकल भी ब्रज-भाषामें कविता करनेवाले कवि हैं। उनमें रामचन्द्र शुक्ल और वियोगी-हरिका हिन्दी-साहित्यमें ऊँचा स्थान है।

अवधीका क्षेत्र अवधका प्रान्त है। कबीरकी भाषामें अवधीका बहुत मेल है। उनके पीछे मलिक मुहम्मद जायसीने अपना पद्मावत अवधीमें लिखा। पद्मावतकी भाषा ठेठ अवधी है। अवधी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास हैं। उनका रामचरित-मानस अवधी में लिखा गया है और उसकी भाषा साहित्यिक अवधी है।

खड़ी-बोली हिन्दीकी सर्वप्रधान शाखा है। इससे मिलती-जुलती भाषा मेरठ और दिल्लीके आसपास बोली जाती है ; पर प्रधानतया यह साहित्यकी एवं व्यवहारकी भाषा है। यह थोड़ी-बहुत समस्त उत्तरी भारतमें समझी जाती है। यही भारतवर्षकी राष्ट्र-भाषा है। मुसलमानोंने दिल्लीपर आधिपत्य प्राप्त करनेके पश्चात् यहाँके लोगोंसे व्यवहार करनेके लिए इसको अपनाया और उनके साथ यह समस्त भारतमें फैल गई। मुसलमान इसमें साहित्य-रचना भी करने लगे। बलबन और अलाउद्दीनका दरबारी कवि अमीर-खुसरो खड़ी-बोलीके प्राचीन कवियोंमें सबसे अधिक महत्त्वशाली है। पीछे मुसलमान लोग अपनी रचनाओंमें अरबी-फारसीके शब्दों, प्रयोगों और भावोंको भरने लगे,

जिससे उर्दू नामक नई भाषा बन गई। हिन्दू लोगोंने पहले खड़ी-बोलीकी ओर ध्यान नहीं दिया। विक्रमकी अठारहवीं शताब्दीमें सीतल कविने खड़ी-बोलीमें अच्छी कविता की। उन्नीसवीं सदीमें मुंशी सदासुखराय और इंशाअल्लाहख़ाँ खड़ी-बोलीके गद्य-लेखक हुए। इस समय अँगरेजोंका राज्य भारतवर्षमें जम गया था। उन्हें भी यहाँके लोगोंसे व्यवहार करनेके लिए एक देश-भाषाकी आवश्यकता हुई और उन्होंने खड़ी-बोलीको अपनाया, क्योंकि इसका प्रचार थोड़ा-बहुत सारे देशमें था। उनके आश्रयमें सदल मिश्र और लल्लूलालने गद्यकी पुस्तकें लिखीं। खड़ी-बोलीके उर्दू रूपको भी अँगरेजोंसे आश्रय मिला। बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द हुए। उन्होंने खड़ी-बोलीके गद्यमें नवीन ढङ्ग की पुस्तकें लिखीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने हिन्दी साहित्यमें युग-परिवर्तन उपस्थित कर दिया। उन्होंने गद्य-पद्यकी अनेक पुस्तकें लिखकर हिन्दी-भाषाको एक निश्चित रूप दिया। अब यह वेगसे उन्नतिकी ओर अग्रसर हुई और गद्यकी एकमात्र भाषा हो गई। भारतेन्दुके पश्चात् प्रताप-नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि धुरन्धर गद्य-लेखक हुए। नवीन गद्य-लेखकोंमें जयशंकर 'प्रसाद', प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल, पद्मसिंह शर्मा, राय कृष्णदास, श्रीराम शर्मा एवं बेचन शर्मा 'उग्र' प्रसिद्ध हैं। पद्यमें अभी तक व्रज-भाषाका ही सिक्का जमा हुआ था। महावीरप्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शंकर शर्मा, श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदिने खड़ी-बोलीमें सफलतापूर्वक कविता करके कविता-क्षेत्रमें खड़ी-बोलीका पूरी तरह प्रवेश करा दिया और मैथिलीशरण गुप्तने इसमें अपनी भारती गुँजाकर इसे सर्वप्रिय बना दिया; परन्तु लोगोंको खड़ी-बोलीकी कर्कशता

एवं कर्ण-कटुता बहुत खटकती थी। आधुनिक कवि सुमित्रानन्दन पंत, सियारामशरण गुप्त आदिने इस दोषको भी बहुत कुछ दूर कर दिया है और अब कवित्तैमें भी खड़ी-बोली प्राधान्य प्राप्त कर चुकी है।

हिन्दीका उत्पत्ति-काल सं० ११०० के लगभग माना जाता है। उस समय तक अपभ्रंश भाषा का प्रचार था। उसीसे धीरे-धीरे हिन्दीकी विभिन्न शाखाओंका विकास हुआ। हिन्दी-भाषा और साहित्यके विकासको चार भागोंमें विभक्त किया जाता है:—

- (१) आदि-काल या वीर-गाथा-युग संवत् ११०० से १४०० तक
- (२) पूर्व-मध्यकाल या भक्ति-युग संवत् १४०० से १७०० तक
- (३) उत्तर-मध्यकाल या रीति-युग संवत् १७०० से १६०० तक
- (४) आधुनिक काल या पद्य-युग संवत् १६०० से अब तक

आदिकालमें हिन्दीका विकास आरम्भ हुआ। इस कालकी भाषा बहुत समय तक अपभ्रंश शब्दोंसे मिश्रित रही और साधारणतया राजस्थानीका प्राधान्य रहा। इस समयका साहित्य मुख्यतया वीर-रसात्मक है। चन्द नामक महाकवि इस कालमें हुआ। उसने 'पृथ्वीराजरासो' नामक बड़ा ग्रन्थ बनाया। जगनिक नामक एक अन्य कविने आल्हखण्डकी रचना की। अमीर खुसरोने खड़ी-बोलीमें पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सखुने आदि लिखे।

पूर्व-मध्यकाल भक्ति-युग है। इस कालमें ब्रज और अवधीने हिन्दी-साहित्यमें प्रधानता प्राप्तकी और उर्दूका स्वतन्त्र विकास होने लगा। राजस्थानी केवल प्रान्तीय भाषा रह गई। साहित्यमें भक्तिकी प्रधानता रही। भक्त-कवियोंके दो विभाग किये जाते हैं—

१ निर्गुणोपासक—इनके दो भेद हैं—(१) वेदान्ती निर्गुणोपासक भक्त—कबीर इस सम्प्रदायके सबसे बड़े कवि हैं। इस सम्प्रदायके अन्य कवि रैदास, नानक,

दादू आदि हैं। ये लोग निगुण और निराकार परमात्माकी उपासनाका उपदेश देते थे और मूर्तिपूजा आदि बाहरी आडम्बरोंका विरोध करते थे। भारतीय जनतामें जातिगत ऊँच-नीचके भावोंको दूर करनेमें इनकी वाणीने बड़ा काम किया। (२) प्रेममार्गी निगुणोपासक भक्त—इस सम्प्रदायके प्रायः सभी कवि मुसलमान हैं। उनमें सबसे बड़े मलिक मुहम्मद जायसी हैं। इन लोगोंने आख्यान-काव्य लिखे हैं और लौकिक प्रेम-द्वारा परमात्माके प्रेमका दिग्दर्शन करानेका प्रयत्न किया है।

२—सगुणोपासक—इनके भी दो भेद हैं—(१) राम-शाखाके सगुणोपासक भक्त—वे सगुण और साकार परमात्माकी उपासना करनेवाले थे, एवं रामके रूपमें परमात्माकी आराधना करते थे। इस शाखाके सबसे बड़े कवि तुलसीदास हैं, जो हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। (२) कृष्ण-शाखाके सगुणोपासक भक्त—ये कृष्णके रूपमें सगुण परमात्माकी उपासना करनेवाले थे। सूरदास, हित हरिवंश, मीराबाई आदि इस शाखाके प्रधान कवि हैं। इन कवियोंने कृष्ण-चरित्र पर काव्य-रचना की है।

यह काल हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण-युग समझा जाता है। उपर्युक्त महाकवियों के अतिरिक्त केशवदास, गङ्ग, नरोत्तमदास, रहीम, रसखान आदि उत्कृष्ट कवि इसी कालमें हुए। केशवदास रीति-साहित्यके सबसे पहले कवि हैं।

उत्तर-मध्यकाल रीति-युग है। इस कालमें भी ब्रज-भाषाकी प्रधानता रही। उसके अन्तमें खड़ी-बोलीने साहित्य-क्षेत्रमें प्रवेश किया। अलङ्कार, रस आदि साहित्यके विविध अङ्गोंका ध्यान रखते हुए इस कालकी रचनाएँ हुईं। शृङ्गार-काव्यकी प्रधानता रही। इस कालके सबसे बड़े कवि बिहारीलाल हैं। उनकी बिहारी-सतसई बड़ा प्रसिद्ध काव्य है। मतिराम, देव और पद्मा-

कर आदि महत्त्व-पूर्ण कवि इसी कालमें हुए। भूषणने सबसे अलग अपनी वीर-वाणीका गुञ्जार किया। पीछे लाल और सूदनने भी भूषणका अनुसरण किया। इस कालके अन्तमें मुंशी सदासुखने खड़ी-बोलीके गद्यमें भागवतका अनुवाद सुखसागर नामसे किया और इंशाअल्लाखॉने 'रानी केतकीकी कहानी' उसी बोलीमें लिखी। अँग्रेजोंके आश्रयमें रहकर लल्लूलालने प्रेमसागर और सदल मिश्रने नासिकेतोपाख्यान लिखा। इस प्रकार गद्य-की नींव पड़ी।

आधुनिक-कालको गद्य-युग कहते हैं। इसमें गद्यकी प्रधानता रही। ब्रज-भाषा धीरे-धीरे पीछे पड़ने लगी और खड़ी-बोलीकी प्रधानता बढ़ने लगी। गद्यमें तो उसने एकाधिकार स्थापित कर लिया। अँग्रेजी राज्यके स्थापित हो जानेसे पश्चिमी सभ्यताका प्रभाव पड़ने लगा। गद्यका प्रसार बढ़ा और विषय-विस्तार भी हुआ। नाना विषयोंपर पुस्तक-रचना होने लगी। राजा शिव-प्रसाद सितारे-हिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह इस काल के प्राथमिक लेखक हैं। इनके पीछे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आते हैं। ये वर्तमान हिन्दीके निर्माता कहे जाते हैं। इन्होंने विविध-विषयक पुस्तकें लिखीं, एवं कई पत्र-पत्रिकाओंको जन्म दिया। इनकी नाटकावली बहुत प्रसिद्ध है। इनके पश्चात् प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट आते हैं। मिश्रजी कवि और गद्य-लेखक थे और भट्टजी केवल गद्य-लेखक। दोनों का गद्य उत्कृष्ट कोटिका है। इनके साथ हम बालमुकुन्द गुप्तको भी रख सकते हैं।

उनके पश्चात् पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती' का जमाना आता है। भारतेन्दुके बाद महावीरप्रसाद द्विवेदीका नाम सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। भाषाको स्थिर करनेमें और शैलीको परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनानेमें इन्होंने बहुत

बड़ा कार्य किया। ये उच्चकोटिके समालोचक एवं गद्य-लेखक थे। कोई बीस वर्ष तक इन्होंने 'सरस्वती'का संपादन किया। कविता-क्षेत्रमें खड़ी-बोलीका प्रवेश कराने में इन्होंने बड़ा प्रयत्न किया। खड़ी-बोलीके प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त इनके शिष्य एवं अनुयायी हैं। इसी कालमें नाथूराम शङ्कर शर्मा, श्रीधर पाठक और अयोध्यासिंह उपाध्याय बड़े कवि हुए। उपाध्यायजीका 'प्रिय-प्रवास' वर्तमान हिन्दीका सर्वप्रथम महाकाव्य है। इसी समयसे कुछ ही पूर्व बाबू श्यामसुन्दरदास आदि ने नागरी-प्रचारिणी सभा स्थापित का। इस सभाने हिन्दीकी बहुत सेवा की। इसने हिन्दीको अदालतोंमें स्थान दिलवाया एवं कई अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित करवाये, जिनमें हिन्दी-शब्द-सागर नामक एक बृहत् कोष भी है। हिन्दी-भाषा और साहित्यके निर्माण में द्विवेदीजीने जो कार्य किया, वही उसके प्रचार एवं परिवर्द्धनके लिए बाबू श्यामसुन्दरदासने किया। इस काल में मिश्रबन्धुओंने हिन्दी-कवियों का खोजपूर्ण विस्तृत विवरण लिखा और पद्मसिंह शर्माने तुलनात्मक समालोचनाका सूत्रपात किया।

अब हम हिन्दीके नवीन युगकी ओर आते हैं। अब ब्रज-भाषाका स्थान खड़ी-बोलीने पूरी तरह से ले लिया है। जगन्नाथ-दास 'रत्नाकर', रामचन्द्र शुक्ल, वियोगी हरि, आदि दो-एक सज्जन अब भी हमें ब्रजके गौरवका स्मरण दिलाते हैं; परन्तु उसकी प्रधानता नष्ट होगई है। कविता, गद्य-समालोचना आदि विषयोंमें नवीनता आ गई है। खड़ी-बोलीकी कर्कशता एवं कर्ण-कटुता धीरे-धीरे माधुर्यमें परिणत हो रही है। मैथिलीशरण गुप्त पुराने युगके कवि हैं, जो नवीन-युगके कर्णधारोंमें भी स्थान ग्रहण किये हुए हैं। उन्होंने खड़ी-बोलीको लोकप्रिय बनानेमें बहुत

कार्य किया है। इस कालके सबसे बड़े लेखक जयशंकर 'प्रसाद' थे, जो कवि, नाटककार, कहानी-लेखक और औपन्यासिक सभी कुछ थे। हिन्दी-कवितामें रहस्यवाद एवं बेतुकी कविताका सूत्रपात्र उन्होंने किया। वे हिन्दीके एकमात्र श्रेष्ठ नाटककार थे एवं अन्य बातोंमें भी उनका स्थान बहुत ऊँचा था। गल्प-लेखकों और औपन्यासिकों में प्रेमचन्दका स्थान ऊँचा है। उनकी भाषा-शैली भी ऊँचे दर्जे की है। गद्य-लेखकोंमें राय कृष्णदास, चतुरसेन शास्त्री, श्रीराम शर्मा, बेचन शर्मा 'उग्र' और जैनेन्द्रकुमार उल्लेखनीय हैं। समालोचकोंमें रामचन्द्र शुक्लका स्थान सर्वोच्च है। कवियोंमें मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर 'प्रसाद' सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला' और सुमित्रानन्दन पन्त युग-परिवर्तनकारी कवि हैं। स्त्री-कवियोंमें सुभद्राकुमारी चौहान और महादेवी वर्मा उल्लेखनीय हैं। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, इतिहासके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् एवं लेखक हैं।

साहित्यके अन्यान्य अङ्गों की भी खूब उन्नति हो रही है। उच्चकोटिके समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ निकलने लगी हैं। दर्शन, विज्ञान, समाज-शास्त्र, कला-कौशल आदि विषयों पर भी रचनाएँ होने लगी हैं और शीघ्र ही इन विषयों के धुरन्धर लेखक उत्पन्न होकर मातृभाषाके भण्डारको भरेंगे, यह आशा है।

पद्य-कल्पद्रुम

पूर्वार्द्ध—प्राचीन कवि

कबीर

पूर्व-माध्यमिक काल—निर्गुण धारा (ज्ञानाश्रयी शाखा)

[कबीर—कहते हैं कि इनका जन्म काशीके किसी हिन्दू ब्राह्मण-कुलमें हुआ था ; पर उनका पालन-पोषण नीरू नामक मुसलमान जुलाहे-ने किया । दूसरे मतके अनुसार उनका जन्म नीरूकी पत्नी नीमाके गर्भसे बस्ती जिलेके मगहर नामक गाँवमें हुआ था । उनका जन्म-काल संवत् १७५६ और मरण-काल १५७५ माना जाता है । उस समय उत्तर-भारतमें महात्मा रामानन्दने अपना उपदेश देना आरम्भ कर दिया था । बचपनमें कबीरपर इसका बहुत प्रभाव पड़ा । उनके मनमें स्वामी रामानन्दका शिष्य बनने की लालसा जगी । एक दिन वे पहर रात रहे ही पंचगंगा-घाटकी सीढ़ियोंपर, जहाँ स्वामीजी स्नानार्थ आया करते थे, पड़ रहे । अँधेरेमें स्वामीजीका पैर कबीर पर पड़ा, तो उन्होंने राम-राम कहा । कबीरने इसीको गुरुमन्त्र मान लिया और अपनेको स्वामीजीका शिष्य प्रसिद्ध किया । वे जुलाहेका काम और सत्संग दोनों ही करते रहे । यद्यपि वे पढ़े-लिखे न थे, तो भी सत्संग-द्वारा धर्मके गूढ़ रहस्योंको उन्होंने भली-भाँति समझ लिया था । उन्होंने दूर-दूरका

देशाटन भी किया था ; इसलिए उनका अनुभव बहुत बढ़ा-चढ़ा था । हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मोंका बाहरी दिखावा एवं ढोंग उन्हें अच्छा नहीं लगा और उन्होंने जोरोंसे उसका विरोध किया । उन्होंने बतलाया कि दोनों धर्मोंका पारस्परिक विरोध व्यर्थ है । राम और रहीमकी एकता बतलाकर उन्होंने परमात्माकी भक्तिका उपदेश दिया । वे सरल जीवन और अहिंसाके पक्षपाती थे । समय-समयपर जो पद या साखी वे बोलते थे, उन्हें उनके शिष्य लिख लेते थे । उनकी कवितामें सच्चे हृदयसे कही हुई बातें हैं, जो दिलमें घर कर लेती हैं । कठिन विषयोंको भी सरल शब्दोंमें उपमा, दृष्टान्त आदिके द्वारा समझाया गया है । भारतवर्षकी जनताके जीवनपर तुलसीकी भाँति कबीरका भी बहुत प्रभाव पड़ा । जातिगत ऊँच-नीचके भावोंमें उनके कारण बहुत कमी हुई । आज उनके पद घर-घर गाये जाते हैं और उनकी साखियाँ बात-बातमें कहावतोंकी भाँति काममें लाई जाती हैं । कबीरकी भाषा में राजस्थानी, अवधी, खड़ीबोली आदिका मिश्रण हुआ है, जिससे उनकी रचना के प्रचारमें बहुत सहायता मिली है ।]

साखी

सात समँदकी मसि करौं, लेखनि सब बनराइ ।
 धरती सब कागद करौं, हरि-गुन लिखा न जाइ ॥१॥
 कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूँढ़े वन माहि ।
 ऐसे घट-घट राम है, दुनिया देखै नाहि ॥२॥
 यों साई तन में बसै, ज्यों पुहपनमें बास ।
 कस्तूरीके मिरग ज्यों, फिर-फिर सूँघे घास ॥३॥
 सेमर सुअना सेइया, दुइ ढेंढी की आस ।
 ढेंढी फूटि चटाक दै, सुअना चला निरास ॥४॥
 मूँड़ मुँड़ाये हरि मिलै, सब कोई लेयँ-मुड़ाय ।
 बार-बारके मूँड़ते, भेड़ न बैकुंठ जाय ॥५॥
 लघुता से प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि ।
 चीटीं शक्कर लै चली, हाथी के सिर धूरि ॥६॥
 चातक सुतहि पढ़ावही, आन नीर मति लै ।
 मम कुल यही सुभाय है, स्वाति-बूँद चित देइ ॥७॥
 पपिहाको पन देखि करि, धीरज रहै न रंच ।
 मरते दम जल में पड़यो, तऊ न बोरी चंच ॥८॥
 साँभ पड़ी दिन आँथव्यों, चकवी दीन्ही रोय ।
 चल चकवा वा देशमें, रैन कदे नहिं होय ॥९॥
 करु बहियाँ बल आपनी, छाँड़ि बिरानी आस ।
 जाके आँगन है नदी, साँ कस मरै पियास ॥१०॥
 तरुवर तासु विलम्बिये, बारह मास फलन्त ।
 सीतल छाया, गहर फल, पंछी केलि करन्त ॥११॥

रात गँवाई सइन करि, दिवस गँवायो खाय ।
 हीरा जनम अमोल यह, कौड़ी बदले जाय ॥१२॥
 नाम भजौ तो अब भजौ, बहुरि भजौगे कब्व ?
 हरियर हरियर रूखड़े, ईधन हो गये सब्ब ॥१३॥
 काची काया मन अथिर, थिर-थिर काम करन्त ।
 ज्यों-ज्यों नर निधरक फिरै, त्यों-त्यों काल हसन्त ॥१४॥
 माली आवत देखि करि, कलियन करी पुकार ।
 फूले-फूले बिन लिये, काल्ह हमारी बार ॥१५॥
 कहा चुनावै मेड़ियाँ, लाँबी भीत उसारि ।
 घर तौ साढ़े तीन हथ, घना तो पौने चारि ॥१६॥
 कबीर नौबति आपनी, दिन दस लेउ बजाय ।
 ए पुर-पट्टन, ए गली, बहुरि न देखौ आय ॥१७॥
 सातों सबद जु बाजते, घरि-घरि होते राग ।
 ते मन्दिर खाली पड़े, बैठन लागे काग ॥१८॥
 कबीर माला काठकी, कहि समझावै तोहि ।
 मन न फिरावै आपना, कहा फिरावै मोहि ? ॥१९॥
 तनको जोगी सब करै, मनको बिरला कोइ ।
 सब बिधि सहजै पाइये, जो मन जोगी होइ ॥२०॥
 बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोइ ।
 जो दिल खोजौ आपना, मुझ-सा बुरा न कोइ ॥२१॥
 बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर ।
 पंछीको छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥२२॥
 साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं विचार ।
 हतै पराई आत्मा, बाँधि जीभ तरवार ॥२३॥
 साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय ।
 सार-सारको गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥२४॥

साधू ऐसा चाहिए, दुखै-दुखावै नाहिं ।
 फल-फूलनि छेड़े नहीं, रहै बगीचे माहिं ॥२५॥
 खूँदन तौ धरती सहै, बाढ़ सहै बनराइ ।
 संत सहै दुरजन-बचन, दूजै सहा न जाइ ॥२६॥
 करगस सम दुरजन-बचन, रहै संत-जन टारि ।
 बिजुरी परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ? ॥२७॥
 काच, कथीर, अधीर नर, जतन करत ह्वै भंग ।
 साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग ॥२८॥
 संत न बाँधै गाँठड़ी, पेट-समाता लेइ ।
 साईसों सनमुख रहै, जहँ माँगें तहँ देइ ॥२९॥
 साई इतना दीजिये, जामें कुटुम समाय ।
 मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥३०॥
 जो जल बाढ़ै नावमें, घर में बाढ़ै दाम ।
 दोऊ हाथ उलीचिये, यहै सयानों काम ॥३१॥
 केला तबहि न चेतिया, जब ढिंग लागी बेरि ।
 अबके चेतै का भयो, काँटनि लीन्हों घेरि ॥३२॥
 सूरा तबही परखिये, लड़े धनीके हेत ।
 पुरिजा-पुरिजा कटि पढ़ै, तऊ न छाँड़ै खेत ॥३३॥
 कायर बहुत पमावही, बहकि न बोलै सूर ।
 काम पड़े ही जानिये, किसके मुखपर नूर ॥३४॥
 रितु बसन्त जाचक भया, हरखि दिया द्रुम पात ।
 तातैं नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात ॥३५॥
 सुखके साथे सिल परै, नाम हृदयतें जाय ।
 बलिहारी वा दुक्खकी, पल-पल नाम रटाय ॥३६॥

सूरदास

पूर्व-माध्यमिक-काल—सगुण धारा (कृष्ण-शाखा)

[सूरदास—सारस्वत ब्राह्मण थे । आगरासे मथुराको जानेवाली सड़कपर रुनकता नामक गाँव उनकी जन्मभूमि बतलाया जाता है । उनका जन्म-काल सं० १५४० के लगभग और मृत्युकाल सं० १६२० के लगभग माना जाता है । कुछ लोग उन्हें जन्मान्ध बतलाते हैं और कुछ कहते हैं कि वे पीछे अन्धे हुए थे । वे महाप्रभु वल्लभाचार्यके शिष्य थे और उनकी आज्ञासे नित्यप्रति अपने उपास्य देव भगवान् कृष्णकी स्तुतिमें भजन बनाकर गाया करते थे । उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ सूरसागर इन्हीं भजनोंका संग्रह है । कहते हैं कि उन्होंने सवा लाख पद बनाये थे ; पर अब छः-सात हजारसे अधिक नहीं मिलते । महाप्रभुके पुत्र एवं उत्तराधिकारी गोस्वामी विठ्ठलनाथने आठ महात्माओंकी एक अष्टछाप स्थापित की थी । सभी महात्मा उच्चकोटिके कवि थे । सूरदास उन सबमें अग्रगण्य थे । सूरकी कविताका मुख्य विषय भगवान् कृष्णकी लीला है । बाललीला, राधाकृष्ण-प्रेम और गोपी-विरहका वर्णन बहुत विस्तारसे है । वात्सल्य और शृंगार-रसोंके सूरदास सर्वश्रेष्ठ कवि हैं । गोस्वामी तुलसीदासके अतिरिक्त हिन्दीका कोई कवि उन तक नहीं पहुँच पाता और वात्सल्य और वियोग-शृंगारके वर्णनमें तो वे तुलसीदाससे भी आगे निकल जाते हैं । बाल-प्रकृति और विरह-सम्बन्धी छोटी-छोटी बातें भी उनसे नहीं छूटने पाईं और स्वाभाविकता और सरसता तो उनमें सर्वत्र भरी पड़ी है । उनकी रचना व्रजभाषामें है ।]

१—बाल-कृष्ण

(१)

कहन लगे मोहन मैया-मैया ।

पिता नन्दसों बाबा-बाबा, अरु हलधरसों भैया ॥
 ऊँचे चढ़ि-चढ़ि कहत जसोदा, लै-लै नाम कन्हैया—
 दूरि कहूँ जनि जाहु, ललारे, मारेगी काहु की गैया ॥
 गोपी-गवाल करत कौतूहल, घर-घर लेति बलैया ।
 मनि-खंभन प्रतिबिंब बिलोकन, नचत कुँवर निज पैया ॥
 नंद-जसोदाजीके उरतें, इह छबि अनत न जैया ।
 'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरसकों, चरननकी बलि गैया ॥

(२)

हरि अपने आगे कछु गावत ।

तनक-तनक चरननसों नाचत, मन-ही-मनहि रिभावत ।
 बाँह उँचाय काजरी धौरी, गैयन टेरि बुलावत ॥
 माखन खाय आपने कर लै, नन्द-बदनमें नावत ।
 कबहुँ चितै प्रतिबिम्ब खंभमें, लवनी लिये खवावत ॥
 दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरखि अनन्द बढ़ावत ।
 'सूर' स्याम के बाल-चरित ये, नित देखत मन भावत ॥

(३)

मैया, कबहि बढैगी चोटी ?

किती बार मोहि दूध पिवत भई, यह अजहूँ है छोटी ॥
 तू जो कहत बलकी बैनी ज्यों, हैहै लाँबी मोटी ।
 काढ़त, गुह्त, न्हावत, ओछत, नागिन-सी भुईँ लोटी ॥

काचो दूध पियावत पचि-पचि, देति न माखन रोटी ।
'सूर' स्याम चिरजिव दोउ भैया, हरि-हलधरकी जोटी ॥

(४)

खेलत स्याम ग्वालन संग ।

सुबल, हलधर अरु सुदामा, करत नाना रङ्ग ॥
हाथ तारी देत भाजत, सबै करि-करि होड़ ।
बरज हलधर,—स्याम, तुम जनि, चोट लगिहै गोड़ ॥
तब कह्यो,—मैं दौरि जानत, बहुत बल मो गात ।
मोरी जोरी है सुदामा, हाथ मारे जात ॥
बोली उठे तब श्रीसुदामा, जाहु तारी मारि ।
आगे हरि, पाछे सुदामा, धरयो स्याम हँकारि ॥
जानिकै मैं रह्यो ठाढ़ो, छुवत कहा जु मोहि ?
'सूर' हरि खीजत सखासों, मनहि कीनो कोहि ॥

(५)

खेलतमें को काको गोसैयाँ ?

हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ ?
जाति-पाँति हमतें कछु नाहिं, न बसत तुम्हारी छैयाँ ॥
अति अधिकार जनावत यातें, अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ ।
रूँहठि करै तासों को खेलै ? रहे पौढ़ि जहँ-तहँ सब गैयाँ ॥

(६)

सखा कहत हैं—स्याम खिसाने ।

आपुहि आपु ललकि भये ठाढ़े, अब तुम कहा रिसाने ?
बीचहि बोली उठे हलधर तब,—इनके माय न बाप ।
हार-जीत कछु नेक न जानत, लरिकन लावत पाप ॥
आपन हारि सखासों भगरत,—यह कह दिये पठाई ।
'सूर' स्याम उठि चले रोइकै, जननी पूछति धाई ॥

(७)

खेलन अब मेरी जात बलैया ।
जबहिं मोहि देखत लरिकन संग, तबहिं खिभत बलभैया ॥
मोसों कहत—“पूत बसुदेवको, देवकी तेरी मैया ।
मोल लियो कछु दै बसुदेवकों, करि-करि जतन बढ़ैया ॥
अब बाबा कहि कहत नंदसों, जसुमतिकों कहै मैया” ।
ऐसे कहि सब मोहि खिभावत, तब उठि, चलौं खिसैया ॥
पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े, हँसत-हँसत उर लैया ।
‘सूरदास’ नंद बलरामहिं भिरक्यो, सुनि मन हरख कन्हैया ॥

माखन-चोरी—

(८)

कान्ह, कहा चाहत-से डोलत ?
बूभेहूते बदन दुरावत, सूधे बोल न बोलत ॥
सूने निपट अँध्यारे मंदिर, दधि-भाजनमें हाथ ।
अब, कहि, कहा बनैहौ ऊतरु, कोऊ नाहिन साथ ॥
मैं जान्यौ यह घर अपनो है, या धोखेमें आयो ।
देखतु हौं गोरसमें चींटी, काढ़नकों कर नायो ॥
सुनि मृदु-बचन, निरखि मुख-सोभा, ग्वालिन मुरि मुसकानी ।
‘सूर’ स्याम, तुम हो अति नागर, बात तिहारी जानी ॥

(९)

साँवरेहि बरजति क्यों तू नहीं ?
कहा कहौं दिन-प्रतिकी बातें ? नाहिन जाति सही ॥
माखन खात, दूध लै डारत, लेपत देह दही ।
ता पाछें घरहूके लरिकनु भाजत छिरकि मही ॥

जो कछु धरहिं दुराइ दूरि लै, जानत ताहि तहीं ।
 सुनहु, महरि. तेरे या सुतसों ; हम पचि हारि रहीं ॥
 चोर, अधिक चतुराई सीखी, जाइ न कथा कही ।
 तापर 'सूर' बछरुवनि ढीलत, बन-बन फिरत बही ॥

(१०)

जसुदा. तू जो कहति ही मोसों ।
 दिन-प्रति-दिन उरहनो आवति, कहा तिहारो कोसों ?
 बहै उरहना सत्य करनकों, गोविंदह गहि ल्याई ।
 देखन चली जसोदा सुतको, है गये सुता पराई ॥
 तेरे हृदय नेकु मति नाहीं, बदनि देखि पहिचानै ।
 सुन री सखी, कहति डोलत है, या कन्यासो कान्है !
 तैं जो नाम कान्ह मेरेको, सूधो है करि पायो ।
 'सूरदास' स्वामी, यह देखो, तुरत त्रिया है आयो ॥

(११)

मैया मोरी, मैं नहिं माखन खायो ।
 भोर भये गैयन के पाछें, मधुवन मोहि पठायो ।
 चार पहर बंसीबट भटक्यो, साँझ परे घर आयो ॥
 मैं बालक बैयनको छोटी, छींकों का बिधि पायो ।
 ग्वाल-बाल सब ख्याल परे हैं, वरबस मुख लपटायो ॥
 तू जननी मनकी अति भोरी, इनके कहे पतियायो ।
 तेरे जिय कछु भेद उपजत है, जानि परायो जायो ॥
 यह लै अपनी लकुट-कमरिया, बहुतै नाच नचायो ।
 'सूरदास' तब हँसी जसोदा, लै उर कंठ लगायो ॥

श्रीकृष्ण-राधिका-मिलन—

(१२)

बूझत स्याम,—कौन तू गोरी ?
कहाँ रहति, काकी हैं बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खारी ॥
काहेको हम ब्रज-तन आवति, खेलत रहति आपनी पोरी ।
स्रवननि सुनति रहति नँद-ढोटा करत रहत दधि-माखन-चोरी ॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलो संग मिलि जोरी ।
'सूरदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि बातन भुरइ राधिका भोरी ॥

(१३)

कहत कान्ह जननी समुझाई ।
जहँ-तहँ डारे रहत खिलौना, राधा जनि ले जाइ चुराई ॥
साँझ-सकारे आवन लागी, चितै रहति मुरली-तन आई ।
इनहीमें मेरो प्रान बसतु है, तेरे भाएँ नेकु न माई ॥
राखि छिपाइ, कह्यो करि मेरो, बलिदाऊको जनि पतिआई ।
'सूरदास' यह कहति जसोदा,—को लेहै मोहि लगे बलाई ॥

२—गोपी-विरह

(१४)

बरु ये बदराऊ बरसन आये ।
अपनी अवधि जान, नँद-नंदन, गरजि गगन घन छाये ॥
कहियत है, सुरलोक बसत, सखि, सेवक सदा पराये ।
चातक-कुलकी पीर जानिकै तेउ तहाँते धाये ॥
वृण किये हरित, हरखि बेली मिली, दादुर मृतक जिवाये ।
'सूरदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि मधुवन बसि बिसराये ॥

(१५)

ऊधो, इतनी कहियो जाइ ।

अति कृस-गात भई ए तुम बिन परम दुखारी गाइ ॥
जल-समूह बरसत दोउ आँखें, हूँकति लीने नाँउ ।
जहाँ-जहाँ गोदोहन कीन्हो सूँघति सोई ठाँउ ॥
परति पछार खाइ छिन-ही-छिन अति आतुर है दीन ।
मानहुँ 'सूर' काढ़ि डारी हैं बारि मध्यमें मीन ॥

(१६)

अँखियाँ हरि-दरसनकी भूँखी ।

कैसे रहैं रूप-रस-राँची ए बतियाँ सुनि रूखी ॥
अवधि गनत, एकटक मग जोवत, तब एती नहिँ भूँखी ।
अब इन जोग-सँदेसनि, ऊधो, अति अकुलानी दूखी ॥
बारक वह मुख फेरि दिखावहु, दुहि पय पियत पतूखी ।
'सूर' सकति हठि नाव चलावहु, ए सरिता है सूखी ॥

(१७)

नैना भये अनाथ हमारे ।

मदन-गोपाल उहाँतें, सजनी, सुनियत दूर सिधारे ॥
वै जलहर, हम मीन बापुरी, कैसे जिवहिँ निनारे ।
हम चातक-चकोर, स्याम घन, बदन सुधानिधि प्यारे ॥
मधुबन बसत आस दरसन की जोइ-जोइ मग हारे ।
'सूर' स्याम प्रभु करि पिय ऐसी, मृतक हुते पुनि मारे ॥

(१८)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।

प्रीति पतंग करी दीपकसौँ आपै प्राच दह्यो ॥

अलि-सुत प्रीति करी जल-सुतसौं, संपुट माँझ गह्यो ।
 सारँग प्रीति करी जो नादसौं, सनमुख बान सह्यो ॥
 हम जो प्रीति करी माधोसौं, चलत न कछू कह्यो ।
 'सूरदास' प्रभु बिन दुख दूनो, नैनन नीर बह्यो ॥

३—अन्य पद

(१६)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
 जैसे उड़ि जहाजको पंछी फिरि जहाज पै आवै ॥
 कमल-नैनको छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
 परम गंगको छाँड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै ॥
 जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै ।
 'सूरदास' प्रभु, कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ?

(२०)

छाँड़ि मन, हरि-बिमुखनको संग ।
 जिनके संग कुबुधि उपजति है, परत भजनमें भंग ॥
 कहा भयो, पय-पान कराये, बिख नहिं तजत भुजंग ।
 कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हावाये गंग ॥
 स्त्ररको कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूखन अंग ।
 गजको कहा न्हावाये सरिता, बहुरि धरै खेहि छंग ॥
 पाहन पतित बान नहिं भेदत, रीतो करत निषंग ।
 'सूरदास' खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रङ्ग ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

पूर्व-माध्यमिक काल—निर्गुणधारा (प्रेम-मार्गी शाखा)

[मलिक मुहम्मद जायसी—सूफी-सम्प्रदायके मुसलमान थे । ये अवध-प्रान्तके जायस नामक गाँवके रहनेवाले थे । जिससे जायसी कह-
लाये । उनके जन्म-मरणके समयका ठीक पता नहीं चलता । ये पहुँचे
हुए फकीर थे । एक बार किसी राजदरबारमें जाने पर राजाने उनकी
कुरूपता देखकर हँसी की, जिसपर उन्होंने कहा—

मोहिंका हँसेसि कि कोहराहि ?

अर्थात्—मुझपर हँसे कि कुम्हार (यानी परमात्मा) पर, जिसने
मुझे बनाया ? इस पर राजाने लज्जित होकर क्षमा माँगी । संवत् १५६७
में जब उत्तरी भारतमें शेरशाहका राज्य था, तभी उन्होंने अपना प्रसिद्ध
ग्रन्थ 'पद्मावत' बनाया । मुसलमान होकर भी उन्होंने हिन्दीमें रचनाकी,
यह उनकी विशाल हृदयताको सूचित करता है । हिन्दू देवी-देवताओंका
नाम भी उन्होंने श्रद्धाके साथ लिया है । पद्मावतमें चित्तौरके राणा
रतनसेन और सिंहलकी राजकुमारी पद्मावतीके विवाहकी, तथा पद्मावती-
के लिए अलाउद्दीनकी चित्तौर पर की हुई चढ़ाईकी कथा वर्णित हैं । राम-
चरितमानसकी भाँति यह भी एक प्रबन्ध काव्य है । इसकी कविता
स्वाभाविक और गरभीर भावोंसे भरी हुई है । इसमें सांसारिक प्रेमका
दृष्टान्त देकर परमात्माके प्रेमका दिग्दर्शन कराया गया है । यह काव्य ठेठ
अवधी भाषामें है और रामचरितमानस की भाँति दोहा-चौपाइयोंमें लिखा
गया है । वेदान्त-विषयपर अखरावट नामक एक और ग्रन्थ भी जायसीने
लिखा है । हिन्दी-साहित्यमें इस कविताका स्थान बहुत ऊँचा है ।

गोरा की वीर-गति

मत्तै बैठि बादल औ गोरा । सो मत कीज, परे नहिं भोरा ॥
 सुबुधिसौ ससा सिंघ कहँ मारा । कुबुध सिंघ कूआँ परि हारा ॥
 जस तुरकन राजा छर साजा । तस हम साजि छोड़ावहिं राजा ॥
 सोरह सैं चंडोल सँवारे । कुँवर सँजोइल कै बैठारे ॥
 पदमावति कर सजा बिवानू । बैठ लोहार, न जानै भानू ॥
 साज सबै चंडोल चलाये । सुरँग आहार, मोति बहु लाये ॥
 भये सँग गोरा-बादल बली । कहत चले—‘पदमावति चली’ ॥
 बिनवा बादसाहसौ जाई । अब रानी पदमावति आई ॥
 बिनती करे—‘आइहौं दिल्ली । चितउरकै माहि स्यों है किल्ली ॥
 एक घरी जौ आज्ञा पावौ । राजहिं सौँप मंदिर महँ आवौ ॥

इहाँ-उहाँ कर स्वामी, दुआँ जगत मोहि आस ।

पहिले दरस दिखावहु, तौ पठवहु कैलास’ ॥ १ ॥

आज्ञा भई—‘जाइ एक घरी’ । छूँछि जो घरी, फेरि विधि भरी ॥
 चलि बिवान राजा पहुँ आवा । संग चंडोल, जगत सब छावा ॥
 पदमावति कै भेष लोहारू । निकसि काटि बँदि, कीन्ह जोहारू ॥
 उठा कोपि, जस छूटा राजा । चढ़ा तुरंत, सिंघ अस गाजा ॥
 गोरा बादल खाँड़े काढ़े । निकसि कुँवर चढ़ि-चढ़ि भये ठाढ़े ॥
 लेइ राजा चितउर कहँ चलै । छूटेउ सिंघ, मिरिग खलभलै ॥
 चढ़ा साहि चढ़ि, लाग गोहारी । कटक असूफ, परी जग कारी ॥
 फिर गोरा बादलसौ कहा—‘गहन छूटि पुनि चाहै गहा ॥
 चहुँ दिसि आवैं लोपत भानू । अब इहै गाइ, इहै मैदानू’ ॥

तुइ अब राजहिं लइ चलु, गोरा । हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा ॥
तौ पाऊं बादल अस नाऊं । जौ मैदान गोइ लइ आऊं ॥

आजु खड़ग चौहान गहि, करौ सीस-रिपु गोइ ।

खेलौ सौह साहसौं, हाल जगत महँ होइ ॥ २ ॥

तब अगमन होइ गोरा मिला—‘तुइ राजहि लइ चलु बादला ॥
मैं अब आउ भरी, औ भूँजी । का पछिताव, आउ जौ पूँजी ॥
बहुतहि मारि, मरौं जौ जूझी । तुम जिनि रोयेउ तौ मन बूझी’ ॥
कुँवर सहस सँग गोरा लीन्है । और बीर बादल सँग कीन्है ॥
गोरहि समदि मेघ अस गाजा । चला लिये आगे करि राजा ॥
गोरा उलटि खेत भा ठढ़ा । पूरुख देखि चाव मन बाढ़ा ॥

आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि साँझ ।

परति आव जग कारी, होति आव दिन साँझ ॥ ३ ॥

फिर आगे गोरा तब हाँका । ‘खेलौं, करौं आजु रन साका’ ॥
आनई घटा चहूँ दिसि आई । छूटहि बान, मेघ झरि लाई ॥
भइ बगमेल, सल घनघोरा । ओ गजपेल, अकेल सो गोरा ॥
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा । भार-पहार जूझ कर काँधा ॥
लगे मरै गोराकै आगे । बाग न मोर घाव मुख लागे ॥
जैसे पतंग आगि धँसि लेई । एक मुवै, दूसरे जिउ देई ॥
टूटहि सीस, अधर धर डारे । लोटहि कंधहि कंध निनारे ॥
कोई परहिं रुहिर होइ राते । कोई घायल घूमहिं माते ॥
कोइ खुर-खेह गये भरि भोगी । भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी ॥

घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल ।

जूझि कुँवरि सब नीबरे, गोरा रहा अकेल ॥ ४ ॥

गोरै देख, साथि सब जूझा । ‘आपन काल नियर भा’ बूझा ॥
कोपि सिंघ सामुँह रन मेला । लाखन्हसौं नहिं मरै अकेला ॥
लेइ हाँकि हस्तिन्हके ठटा । जैसे पवन बिदारै घटा ॥

जेहि सिर देइ कोपि करवारू । स्यों घोड़े दूटै असवारू ॥
लोटेहि सीस कबंध निनारे । माठ-मजीठ मनहुँ रन ठारे ॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा । चाँचरि खेलि आग जनु लावा ॥
हस्ती घोड़ धाइ जो धूका । ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका ॥

भइ अज्ञा सुलतानी—‘बेगि करहु एहि हाथ ।

रतन जात है आगे, लिये पदारथ साथ’ ॥५॥

सबै कटक मिलि गोरेहि छेंका । गूँजत सिंह जाय नहिं टेका ॥
जेहि दिसि उठै साइ जनु खावा । पलटि सिंह तेहि ठाँव न आवा ॥
जिन जानहु गोरा-सो अकेला । सिंघकै मोंछ हाथ को मेला ॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा । मुये पाछ काँई घिसियावा ॥
करै सिंघ मुख सौंहहि दीठी । जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी ॥

रतनसेन जौ बाँधा मसि गोराके गात ।

जो लगि रुहिर न धोवौ तो लगि होइ न रात ॥६॥

सरजा वीर सिंघ चढ़ि गाजा । आइ सौंह गोरा सौ बाजा ॥
पहुँचा आइ सिंघ असवारू । जहाँ सिंघ गारा बरियारू ॥
मारेसि साँग, पेट महँ धँसी । काढ़ेसि हुमुकि, आँत भुईँ खसी ॥

भाट कहा—‘धनि गोरा, तू भा रावन राव ।

आँत समेट बाँधिकै तुरत देत है पाँव’ ॥७॥

कहेसि, अंत अब भा भुईँ परना । अन्त त खसे खेह सिर भरना ॥
कहि कै गरजि सिंघ अस धावा । सरजा सारदूल पहुँ आवा ॥
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ । परा खड़ग जनु परा निहाऊ ॥
बज्रक साँग बज्रकै डाँड़ा । उठी आगि तस बाजा खाँड़ा ॥
मानहु बज्र बज्रसौँ बाजा । सबही कहा, परी अब गाजा ॥

तस मारा हठि गोरे उठी बज्रकै आगि ।

कोई नियरै नहिं आवै, सिंघ-सदूरहिं लागि ॥८॥

तब सरजा कोपा बरिबंडा । जनहु सदूर केर भुजदंडा ॥
 कोपि गरजि मारेसि, तस बाजा । जानहु दूट परी सिर गाजा ॥
 ठाँठर दूट, फूट सिर तासू । स्यों सुमेर जनु दूट अकासू ॥
 धमकि उठा सब सरग-पतारू । फिर गइ दीठ, फिरा संसारू ॥
 भइ परलय, अस सबही जाना । काढ़ा खड़ग सरग नियराना ॥
 तस मारेसि ज्यों घोड़ै काटा । धरती फाटि सेस फन फाटा ॥

गोरा परा खेत महँ, मुर पहुँचावा यान ।
 बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान ॥६॥

गोस्वामी तुलसीदास

पूर्व-माध्यमिक काल—सगुण धारा (राम-शाखा)

(गोस्वामी तुलसीदास—सरयूपारीण ब्राह्मण थे । उनका जन्म बाँदा जिलेके राजापुर नामक ग्राममें संवत् १५५४ वि० में हुआ था, (कुछ लोग उनका जन्म-काल सं० १५८६ मानते हैं) कहते हैं कि उनकी माता उनके जन्मके पश्चात् ही चल बसीं और उनके पिताने उन्हें त्याग दिया था । कुछ दिनों तक मुनियाँ नामक दासीने उनका पालन-पोषण किया । पीछे नरहरिदास नामक महात्माने उनको अपने यहाँ रखा और उन्हें रामायणकी कथा कई बार सुनाई । इसके पश्चात् काशीमें शेषसनातन नामक विद्वान् से उन्होंने वेदशास्त्रोंका अध्ययन किया । फिर वे अपने घर राजापुर लौट आये और विवाह करके वहीं रहने लगे । कहते हैं कि वे अपनी स्त्री में अस्यन्त अनुरक्त थे । एक बार वह उनकी अनुपस्थिति में मायके चली गई । मालूम होने पर वे भी आधी रातको नदी पार करके उसके पास पहुँचे । इस पर स्त्री ने उनको बहुत फटकारा और कहा कि मुझसे जितनी प्रीति है, उतनी यदि श्रीराममें होती, तो भवभय से ही छूट जाते । स्त्री की यह बात उनको लग गई और वे तुरन्त काशीमें आकर विरक्त हो गये । इसके पीछे लगभग बीस वर्ष तक उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण किया । फिर क्रमसे चित्रकूट, अयोध्या और काशी में रहे । उनका देहान्त संवत् १६८० में हुआ ।

गोस्वामीजी हिन्दीके सबसे बड़े कवि समझे जाते हैं । उनका मुख्य ग्रन्थ रामचरितमानस है, जिसका लोगोंमें बहुत प्रचार है । शायद ही कोई हिन्दी पदा-लिख्ता व्यक्ति इससे अपरिचित हो । अपढ़ लोग भी

उसको सुनकर आनन्द-लाभ करते हैं। इसकी अनेकों चौपाइयों जोगोंको कण्ठ रहती हैं, जिनका वे अवसर आने पर कहावत एवं धर्मवाक्योंकी भौति प्रयोग करते हैं। यह ग्रन्थ हिन्दू-जातिका धर्मग्रन्थ है। सामाजिक एवं राजनीतिक आदर्शोंके लिए इसका निर्देश किया जाता है। हिन्दू-जातिके जीवन पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा है। निराशा-सागरमें डूबती हुई हिन्दू-जातिकी इसने रक्षा की एवं डूबते हुए हिन्दू-धर्मको बचाया। गोस्वामीजीने श्रीरामके चरित्रका आदर्श उपस्थित करके जातीय-जीवनमें नवजीवनका संचार किया एवं ऊँचे आदर्श खड़े करके जीवनकी उच्चताको बनाये रखा। महात्मा भरत-जैसा आदर्श चरित्र संसारके साहित्यमें कठिन्तासे मिलेगा। गोस्वामीजीमें लोक-संग्रह (समाजके उपकार) का भाव बड़ा प्रबल था। समाजकी मर्यादाको स्थापित रखनेके लिए उन्होंने पूरा प्रयत्न किया।

कविताकी दृष्टिसे भी रामचरितमानस उच्चकोटिका काव्य है। मानव-जीवनकी कोई परिस्थिति इसके क्षेत्रसे बाहर नहीं रही। पात्रोंका चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दर एवं स्वाभाविक हुआ है। रस और अलङ्कारोंका निर्वाह स्वाभाविकताके साथ किया गया है। साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति भी इसको पढ़कर आनन्द-लाभ करते हैं। और विद्वान् भी इसके भाव-गाम्भीर्यसे मुग्ध होते हैं। यह ग्रन्थ अवधी भाषामें लिखा गया है।

गोस्वामीजीके अन्य मुख्य-मुख्य ग्रंथोंके नाम ये हैं—१ विनय-पत्रिका, २ गीतावली, ३ कृष्णगीतावली, ४ कवितावली, ५ दोहावली, ६ तुलसी-सतसई, • बरवै-रामायण।

गोस्वामीजीने अवधी और ब्रज-भाषाओंमें कविता लिखी है। उनकी भाषा सरल और व्यवस्थित है। शिथिलता उसमें कहीं नहीं पाई जाती।]

१—रामका वन-गमन

द्वार भीर, सेवक सचिव, कहहिं उदित रवि देखि ।
जागे अजहुँ न अवध-पति, कारन कवन बिसेखि ॥१॥

पछिले पहर भूपु नित जागा । आजु हमहिं बड़ अचरजु लागा ॥
जाहु सुमंत्र, जगावहु जाई । कीजिय काज रजायसु पाई ॥
गये सुमंत्र तब राउर माहीं । देखि भयावन जात डेराहीं ॥
धाइ खाइ जनु, जाइ न हेरा । मानहु बिपति-बिखाद-बसेरा ॥
पूछे कोऊ न ऊतरु देई । गये जेहि भवन भूप कैकेई ॥
कहि जय-जीव बैठ सिर नाई । देखि भूप-गति गयेउ सुखाई ॥
सोच विकल बिबरन महि परेऊ । मानहु कमल मूल परिहरेऊ ॥
सचिव सभीत, सकहि नहिं पूछी । बोली असुभ-भरी सुभ-छूछी ॥

परी न राजहि नींद निसि, हेतु जानि जगदीसु ।
रामु-रामु रटि भोरु किय, कहेउ न मरमु महीसु ॥२॥

आनहु रामहि बेगि बुलाई । समाचार तब पूछेहु आई ॥
चलेउ सुमंत्र राय रुख जानी । लखी, कुचालि कीन्ह कछु रानी ॥
सोच-बिकल मगु परइ न पाँऊ । रामहि बोलि कहहि का राऊ ॥
उर धरि धीरज गयेउ दुआरे । पूछहि सकल देखि मनु मारे ॥
समाधान सो करि सबहीका । गयेउ जहाँ दिनकर-कुल-टीका ॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा । आदर कीन्ह पिता सम लेखा ॥
निरखि बदन, कहि भूप रजाई । रघुकुल-दीपहिं चलेऊ लिवाई ॥
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं । देखि लोग जहँ-तहँ बिलखाहीं ॥

जाइ देखि रघुवंस-मनि, नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहु वृद्ध गजराजु ॥३॥

सूखहि अधर, जरइ सब अंगू । मनहुँ दीन मनि-हीन-भुअंगू ॥
सरुष समीप देखि कैकेई । मानहुँ मीचु घरी गनि लेई ॥
करुनामय मृदु राम-सुभाऊ । प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूछी मधुर-बचन महतारी ॥
मोहि कहु, मातु. तात-दुख-कारन । करिय जतन, जेहि होइ निवारन ॥
सुनहु राम, सब कारन एहू । राजहि तुमपर बहुत सनेहू ॥
देन कहेउ मोहि तुइ वरदाना । माँगेउ जां कछु मोहि सुहाना ॥
सो सुनि भयेउ भूप उर-सोचू । छाँड़ि न सकहि तुम्हार सँकोचू ॥

सुत सनेह इत, वचन उत, संकट परेउ नरेसु ।
सकहु तो आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन-कलेसु ॥४॥

निधरक बैठि कहइ कटु-बानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान, बचन सर नाना । मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना ॥
जनु कठोरपनु धरे सरारू । सिखइ धनुष-विद्या बर-बीरू ॥
सब प्रसंग रघुपतिहि सुनाई । बैठि, मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥
मन मुसकाइ भानु-कुल-भानू । राम सहज आनन्द-निधानू ॥
बोले बचन बिगत-सब-दखन । मटु-मंजुल जनु बाग-बिभूखन ॥
सुनु जननी, सोइ सुत बड़-भागी । जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी ॥
तनय मातु-पितु-तोखनिहारा । दुरलभ, जननि, सकल संसारा ॥

मुनिगन-मिलनु बिसेखि बन, सबहिं भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु. बहुरि संमत जननी, तोर ॥५॥

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधिसब बिधि मोहिं सनमुख आजू ॥
बौ न जाउँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिय मोहि मूढ़-समाजा ॥

सेवहिं अरँडु कल्पतरु त्यागी । परिहरि अमिय लेहिं बिखु माँगी ॥
तेउ न पाइ अस समय चुकाहीं । देखु बिचारि, मातु, मन माहीं ॥
अंब, एक दुख मोहि बिसेखी । निपट बिकल नर-नायकु देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी । होति न मोहि प्रतीति, महतारी ॥
राउ धीर गुन-उदधि अगाधू । भा मोहितें कछु बड़ अपराधू ॥
तातें मोहि न कहत कछु राऊ । मोरि सपथ तोहि, कहु सतभाऊ ॥

सहज सरल रघुवर-वचन, कुमति कुटिल करि जान ।

चलइ जोंक जिमि बक्रगति, जद्यपि सलिल समान ॥६॥

रहसी रानि राम रुख पाई । बोली कपट सनेह जनाई ॥
सपथ तुम्हारि, भरत कइ आना । हेतु न दूसर मै कछु जाना ॥
तुम्ह अपराध जोगि नहिं ताता । जननी-जनक-बन्धु-सुख-दाता ॥
राम, सत्य सब जो कछु कहहू । तुम पितु-मातु-वचन-रत अहहू ॥
पितहि बुझाइ कहहु, बलि सोई । चौथेपन जेहि अजसु न होई ॥
तुम सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हें । उचित न तासु निरादर कीन्हें ॥
लोगहिं कुमुख बचन सुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहिं मातु-वचन सब भाये । जिमि सुरसरि-गतसलिलसुहाये ॥

गइ मुरझा. रामहिं सुमरि, नृप फिरि करवट लोन्ह ।

सचिव राम-आगमनु कहि, विनय समय सम कीन्ह ॥७॥

अवनिप अकनि राम पगु धारे । धरि धीरज तब नयन उधारे ॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरन परत नृप राम निहारे ॥
लिये सनेह-बिकल उर लाई । गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई ॥
रामहिं चितइ रहेउ नरनाहू । चला बिलोचन बारि-प्रवाहू ॥
सोकबिबस कछु कहत न पारा । हृदय लगावत बारहिं बारा ॥
विधिहि मनाव राउ मन माहीं । जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं ॥
सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । बिनती सुनहु, सदासिव, मोरी ॥
आसुतोष तुम अवढर-दानी । आरति हरहु दीन जन जानी ॥

तुम्ह प्रेरक सबके हृदय, सो मति रामहिं देहु ।

बचन मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सील-सनेहु ॥८॥

अजस होउ जग, सुजस नसाऊँ । नरक परउँ, बरु सुरपुर जाऊँ ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं । लोचन-ओट राम जनि होहीं ॥
अस मन गुनइ राउ, नहिं बोला । पीपर-पात-सरिस मन डोला ॥
रघुपति पितहि प्रेम-बस जानी । पुनि कछु कहहि मातु अनुमानी ॥
देस-काल अवसर अनुसारी । बोले बचन विनीत बिचारी ॥
तात, कहहुँ कछु, करउँ डिठाई । अनुचित छमब जानि लरिकाई ॥
अति लघु बात लागि दुख पावा । काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाईंहि पूछिउँ माता । सुनि प्रसंग भये सीतल गाता ॥

मंगल-समय सनेह बस, सोच परिहरिय तात ।

आयसु देइअ हरखि हिय, कहि पुलके प्रभुगात ॥९॥

धन्य जनमु जगतीतल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितु-मातु प्रान सम जाके ॥
आयसु पालि, जनम-फलु पाई । ऐहउँ बेगिहि, होइ रजाई ॥
बिदा मातु-सन आवउँ माँगी । चलिहउँ बननि बहुरि पग लागी ॥
अस कहि रामु गवन तब कीन्हा । भूप सोकबस उतरु न दीन्हा ॥
नगरि व्यापि गइ बात सुतीछी । छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी ॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई । बड़ बिखाइ, नहिं धीरज होई ॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ । छये भवन पर पावक धरेऊ ॥
निजकर नयन काढ़ि चह दीखा । डारि सुधा बिखु चाहत चीखा ॥
पालव बैठि पेड़ एहि काटा । सुख महँ सोक-ठाटु धरि ठाटा ॥
सदा राम एहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥
नज प्रतिबिंब बरुह गहि जाई । जानि न जाइ नारि-गति, भाई ॥

काह न पावक जरि सकै, का न समुद्र समाइ ।

का न करइ अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ ॥१०॥

का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥
 एक कहहिं, भल भूप न कीन्हा । बर बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥
 एक बिधातहिं दूखनु देहीं । सुधा दिखाय दीन बिखु जेही ॥
 खरभरु नगर, सोचु सब काहू । दुसह-दाह उर, मिटा उछाहू ॥
 जरहिं बिखम ज्वर, लेहिं उसासा । कवनि राम बिन जीवन-आसा ॥
 बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी । जनु जलचर-गन सूखत पानी ॥
 अति-बिखाद-बस लोग-लोगाई । गये मातु पहुँ राम गोसाई ॥
 मुख प्रसन्न, चित चौगुन चाऊ । मिटा सोचु, जनि राखइ राऊ ॥

नव-गयंदु रघुबीर-मनु, राज अलान समान ।

छूट जानि बनगवनु सुनि, उर आनँदु अधिकान ॥११॥

रघुकुल-तिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातुपद नायेउ माथा ॥
 दीन्ह असीस लाइ उर लीन्हें । भूखन-बसन निझावारि कीन्हें ॥
 बार-बार मुख चुंबति माता । नयन नेहजलु, पुलकित गाता ॥
 गोद राखि पुनि हृदय लगाये । स्रवत प्रेमरस पयद सुहाये ॥
 प्रेम-प्रमोदु न कछु कहि जाई । रंक धनद-पदवी जनु पाई ॥
 सादर सुन्दर बदनु निहारी । बोली मधुर बचन महतारी ॥
 कहहु तात, जननी बलिहारी । सबहि लगन मुद-मंगल-कारी ॥
 सुकृत-शील-सुख सौँव सुहाई । जनम-लाभ कइ अवधि अघाई ॥

जेहिं जाचत नरनारि सब, अति आरत एहि भाँति ।

जिमि चातक-चातकि तृखित, वृष्टि सरद-रितु स्वाति ॥१२॥

तात, जाउँ बलि बेगि नहाहू । जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥
 पितु समीप तब जाहेहु, भैया । भइ बड़ि बार, जाय बलि मैया ॥
 मातु-बचन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह-सुरतरु के फूला ॥
 मुख मकरंद भरे, स्त्रिय-भूला । निरखि राम-मन-भँवर न भूला ॥
 धरम-धुरीन-धरम-गति जानी । कहेउ मातुसन अति मृदुबानी ॥
 पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥

आयसु देहु, मुदित-मन, माता । तेहि मुद-मंगल कानन जाता ॥
जनि सनेह-बस डरपसि भोरे । आनँदु, अंब, अनुग्रह तोरे ॥

बरस चारि-दम बिपिन बसि, करि पितु-बचन प्रमान ।

आइ पायँ पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान ॥१३॥

बचन बिनीत मधुर रघुबर के । सर सम लागि मातु-उर करके ॥
सहमि सूखि मुनि सीतल बानी । जिमि जवास पर पावस पानी ॥
कहि न जाइ बल्लु हृदय-बिग्यादू । मनहुँ मृगी मुनि केहरि नादू ॥
नयन सजल, तन थर-थर काँपी । माँजहिं खाहि मीन जनु माँपी ॥
धरि धीरज, सुत-बदन निहारी । गदगद बचन कहति महतारी ॥
तात, पितहि तुम प्रान-पियारे । देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥
राज देन कहँ सुभ दिन साधा । कहेउ जान बन केहि अपराधा ॥
तात, सुनावहु मोहि निदान् । को दिनकर-कुल भयेउ कृसान् ॥

निरखि रामरुख सचिबसुत, कारन कहेउ बुझाइ ।

सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ ॥१४॥

राखि न सकइ, न कहि सक जाहू । दुहँ भाँति उर दारुन दाहू ॥
लिखित सुधाकर गा लिखि राहू । बिधिगति वाम सदा सब काहू ॥
धरम सनेह उभय मति घेरी । भइ गति साँप छछूँदरि केरी ॥
राखउँ सुतहि, करउँ अनुरोधू । धरम जाय, अरु बन्धु-बिरोधू ॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी । संकट-सोच-बिबस भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तिय-धरम सयानी । राम भरत दोउ सुत सम जानी ॥
सरल-सुभाउ राम-महतारी । बोली बचन धीर धरि भारी ॥
तात, जाउँ बलि कीन्हेउ तीका । पितु आयसु सब धरमक टीका ॥

राजु देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेसु ।

तुम्ह बिन भरतहि भूपतहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥१५॥

जौ केवल पितु-आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥

जौ पितु मात कहैउ बन जाना । तौ कानन सत-अवध समाना ॥
 पितु बनदेव, मातु बनदेवी । खग-मृग चरन-सरोरुह-सेवी ॥
 अंतहु नृपहि उचित बनबामू । बय बिलोकि हिय होइ हरासू ॥
 बड़भागी बन अवध अभागी । जेहि रघुवंस-तिलक, तुम्ह त्यागी ॥
 पूत, परम प्रिय तुम सबही के । प्रान प्रान के, जीवन जी के ॥
 ते तुम्ह कहहु, मातु बन जाऊँ । मैं सुनि बचन बैँठ पछिताऊँ ॥
 देव पितर सब तुम्हहि, गोसाईँ । राखहि नयन पलक की नाई ॥
 जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ । करि अनाथ जन-परिजन गाऊँ ॥
 सबकर आजु सुकृतफल-बीता । भयेउ करालु-कालु विपरीता ॥
 दारुन दुसहु दाह उर व्यापा । बरनि न जाइ बिलाप-कलापा ॥

समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ ।

जाइ सासु-पद-कमल जुग, बंदि बैँठ सिर नाइ ॥१६॥

दीन्ह असीस सासु मृदुबानी । अति सुकुमार देखि अकुलानी ॥
 बैँठि नमित-मुख सांचति सीता । रूप-रासि पति-प्रेम-पुनीता ॥
 चलन चहत बन जीवननाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
 की तनु प्रान कि केवल प्राना । विधि करतब कछु जाय न जाना ॥
 चारु चरननख लेखति धरनी । नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी ॥
 मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं । हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं ॥
 मंजु विलोचन मोचति बारी । बोली देखि राम-महतारी ॥
 तात, सुनहु सिय अतिसुकुमारी । सासु-ससुर-परिजनहिं पियारी ॥

पिता जनक भूपालमनि, ससुर भानु-कुल भानु ।

पति रविकुल-कैरव-बिपिन-विधु गुन-रूप-निधानु ॥१७॥

मैं पुनि पुत्र-बधू प्रिय पाई । रूप-रासि गुन-सील सुहाई ॥
 नयन-पुतरि करि प्रीति बढ़ाई । राखउँ प्रान जानकिहि लाई ॥
 कलपबेलि जिमि बहुविधि लाली । सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
 मूलत फलत भयेउ बिधि बामा । जानि न जाइ, काह परिनामा ॥

पलंगपीठ तजि गाद हिंडोरा । सिय न दीन्ह पग अबनि कठोरा ॥
 जिवनमूरि जिमि जुगवत रहेऊँ । दीपबाति नहिं टारन कहेऊँ ॥
 सोइ सिय चलन चहति बन साथी । आयसु काह होइ, रघुनाथा ॥
 चन्द किरन-रस-रसिक चकोरी । रवि-रुखनयन सकइ किमि जोरी ॥

करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि ।

बिख-बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि । रि ॥१७॥

बनहित कोल-किरात-किशोरी । रची बिरंचि बिषय-सुख भोरी ॥
 पाहन-कृमि जिम कठिन सुभाऊ । तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ॥
 कै तापस-तिय कानन जोगू । जिन तप हेतु तजा सब भोगू ॥
 सिय बन बसहि, तात केहि भाँतो । चित्र-लिखित कपि देखि डराती ॥
 सुर-सर-सुभग बनज-वन-चारी । डाबर जांग कि हंसकुमारी ॥
 अस बिचारि जस आयसु हाँई । मैं सिख देउँ जानकिहि साँई ॥
 जो सिय भवन रहइ कह, अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥
 सुनि रघुबीर मातु-प्रिय-बानी । सील-सनेह सुधा जनु सानी ॥

कहि प्रिय बचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोस ।

लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन-गुन-दोस ॥१८॥

मातु समीप कहत सकुचार्ही । बाले समउ समझि मन माहीं ॥
 राजकुमारि, सिखावन सुनहू । आन भाँतिजिय जनि कछु गुनहू ॥
 आपन मोर नीक जो चहहू । बचन हमार मान गृह रहहू ॥
 आयसु मोर सासु-सेवकाई । सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥
 एहितें अधिक धरम नहिं दूजा । सादर सास-ससुर-पद-पूजा ॥
 जब-जब मातु करिहि सुधिमोरी । होइहिं प्रेमविकल मतिभोरी ॥
 तब-तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुन्दरि, समझायेहु मृदुबानी ॥
 कहउँ सुभाय, सपथ सत मोही । सुमुखि, मातुहित राखउँ तोही ॥

गुरु-स्रुति-संमत धरमफलु, पाइअ बिनहिं कलेस ।

हठबस सब संकट सहे, गालव नहुष-नरेस ॥२०॥

मैं पुनि करि प्रमान पितु-बानी । बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
 दिवस जात नहिं लागहि बारा । सुन्दरि, सिखवनु सुनहु हमारा ॥
 जौ हठि करहु प्रेमबस, बामा । तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥
 काननु कठिन भयंकर भारी । घोर घामु, हिम बारि बयारी ॥
 कुस कंटक मग काँकर नाना । चलब पयादेहि बिनु पदत्राना ॥
 चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम, भूमिधर भारे ॥
 कंदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥
 भालु बाघ बृक केहरि नागा । करहिं नाद, सुनि धीरज भागा ॥

भूमि सयन, बलकल बसन, असन कंद-फल-मूल ।

ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल ॥ २१ ॥

नर अहार रजनीचर करहीं । कपटबेस बिधि कोटिक धरहीं ॥
 लागहि अति पहारकर पानी । बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥
 व्याल-कराल बिहँग बन घोरा । निसचर निकर नारि-नर चोरा ॥
 डरपहि धीर गहन सुधि आये । मृगलोचनि, तुम्ह भीरु सुभाये ॥
 हंसगमनि, तुम्ह नहिं बन जोगू । सुनि अपजसु मांहि देखि लोगू ॥
 मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवनपयोधि मराली ॥
 नव रसाल-बन बिहरनसीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
 रहहु भवन अस हृदय बिचारी । चंदबदनि, दुख कानन भारी ॥

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि ।

सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि ॥ २२ ॥

सुनि मृदु-बचन मनोहर पिय के । लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
 सीतल सिख दाहक भइ कैसे । चकइहिं सरद चन्द निसि जैसे ॥
 उतरु न आव बिकल बैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
 बरबस रोकि बिलोचन भारी । धरि धीरज उर अवनिकुमारी ॥
 लागि सासुपग कह कर जोरी । छमबि देबि, बड़ि अविनय मोरी ॥

दीन्ह प्रानपति मोहि सिख सोई । जेहि बिधि मोर परमहित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं । पिय-बियोग सम दुखु जग नाहीं ॥

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान ।

तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ॥२३॥
मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई । सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥
जहँ लगि, नाथ, नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते ॥
तन धन धाम धरनि पुर राजू । पति-बिहीन सब सोक-समाजू ॥
भोग रोग सम भूखन भारू । जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिअ बिनु देह, नदी बिनु बारी । तइसिअ, नाथ, पुरुख बिनु नारी ॥
नाथ, सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद बिमल बिधु बदन निहारे ॥

खग मृग परिजन, नगर बन, बलकल बिमल दुकूल ।

नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल सुख मूल ॥२४॥
बनदेवी बनदेव उदारा । करिहहिँ सासु ससुर सम सारा ॥
कुस-किसलय साथरी सुहाई । प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई ॥
कन्द-मूल-फल अमिअ अहारू । अवध सौध सत सरिस पहारू ॥
छिनुछिनु प्रभुपद कमल बिलोकी । रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
बन-दुख नाथ, कहे बहुतेर । भय बिखाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु-वियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहिँ न कृपानिधाना ॥
अस जिअ जानि सुजानसिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाँड़िअ जनि ॥
बिनती बहुत करउँ का, स्वामी । करुनामय उर अन्तरजामी ॥

राखिअ अवध, जो अवधि लगि, रहत जानिअहि प्रान ।

दीनबन्धु सुन्दर सुखद, सील सनेह निधान ॥२५॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु, छिनु, चरनसरोज निहारी ॥
सबहि भाँति पियसेवा करिहउँ । मारगजनित सकल छम हरिहउँ ॥

पाँय पखारि बैठि तरु छाँही । करिहउँ बाउ मुदित मनमाँही ॥
 स्रम-कन सहित स्यामतनु देखे । कहँ दुख-समउ प्रानपति पेखे ॥
 सममहि तृन-तरु पल्लव डासी । पाय पलोटीहि सब निसि दासी ॥
 बार-बार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
 को प्रभुसँग मोहि चितव निहारा । सिंहबधुहि जिमि ससक-सिआरा ॥
 मैं कुसुमारि, नाथ बनजोगू । तुमहि उचित तप माँकहँ भोगू ॥

ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जान हृदय बिलगान ।

तौ प्रभु बिखम बियोग दुख, सहिहहिं पामर प्रान ॥२६॥

असि कहि सीय विकल भइ भारी । बचन-वियोग न सकी सँभारी ॥
 देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥
 कहेउ कृपालु भानुकुल-नाथा । परिहरि सोच चलहु बन साथा ॥
 नहिं बिखाद कर अवसर आजू । बेग करहु बन-गवन-समाजू ॥
 कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई । लगे मातु पद आसिस पाई ॥
 बेगि प्रजा दुख मेटव आई । जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥
 फिरिहि दसा, बिधि, बहुर कि मोरी । देखिहउँ नयन मनोहर जोरी ॥
 सुघरी सुदिन, तात, कब हाँइहि । जननी जिअत बदनबिधु जोइहि ॥

बहुरि बच्छ कहि, लाल कहि, रघुपति रघुवर तात ।

कबहि बोलाइ लगाइ हिय, हरखि निरखिहउँ गात ॥२७॥

लखि सनेह कातरि महतारी । बचन न आव विकल भइ भारी ॥
 राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेह न जाइ बखाना ॥
 तब जानकी सासु-पग लागी । सुनिअ, मातु, मैं परम अभागी ॥
 सेवा-समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ॥
 तजब छाँभ, जन छाँड़िय छोहू । करम कठिन कछु दोस न मोहू ॥
 सुनि सियबचन सासु अकुलानी । दसा कवनिबिधि कहाँ बखानी ॥
 बारहिबार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरज सिख आसिस दीन्ही ॥
 अचल होइ अहिबात तुम्हारा । जब लगि गंग-जमुन-जलधारा ॥

सीतहि सासु अमीस सिख, दीन्ह अनेक प्रकार ।

चली नाइ पदपदुम सिरु, अति हित बारहिं बार ॥२८॥

समाचार जब लल्लिमन पाये । व्याकुल बिलखबदन उठि धाये ॥
कंप-पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े । मीन दीन जनु जलतें काढ़े ॥
सोच हृदय बिधि का होनिहारा । सब सुखसुकृति सिरान हमारा ॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु कर जारे । देह गेह सब सन तृन तारे ॥
बोले बचन राम नयनागर । सील-सनेह सरल सुख-सागर ॥
तात, प्रेम बस जनि कदराहू । समुक्ति हृदय परनाम उछाहू ॥

मातु-पिता गुरु-स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय ।

लहेंउ लाभ तिन्ह जनमकर, नतरु जनम जग जाय ॥२९॥

अस जिय जानि सुनहु सिखभाई । करहु मातुपितु पद सेवकाई ॥
भवन भरत रिपु-सूदन नाहीं । राउ बृद्ध मम-दुख मनमाहीं ॥
मैं बन जाउँ तुम्हहिं लै साथा । होइहिं सबबिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू । सब कहँ परइ दुसहु दुख भारू ॥
रहहु, करहु सब करि परितोसू । नतरु तात होइहिं बड़ दोसू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात, अस नीति बिचारी । सुनत लखन भये व्याकुल भारी ॥
झिअरे बदन सूखि गये कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसे ॥

उतरु न आवत प्रेमबस, गहे चरन अकुलाइ ।

नाथ दास मैं, स्वामि तुम्ह, तजहु त कहा बसाइ ॥३०॥

दीन्ह मोहि सिख नीकि गुसाई । लागि अगम अपनी कदराई ॥
नरवर धीर धरम धुर धारी । निगम-नीति कहँ ते अधिकारी ॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह प्रतिपाला । मंदरमेरु कि लेहि मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानौं काहू । कहाँ सुभाउ, नाथ, पतिआहू ॥

जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबन्धु उर अन्तरजामी ॥
धरम-नीति उपदेसिअ ताही । कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही ॥
मन-क्रम-बचन चरनरत होई । कृपासिन्धु परहरिअ कि सांई ॥

करुनासिन्धु सुबंधु के, सुनि मृदुबचन विनीति ।

समुझाये उर लाइ प्रभु, जानि सनेह समीत ॥३१॥

माँगहु बिदा मातु-सन जाई । आवहु बेगि, चलहु बन भाई ॥
मुदित भये सुनि रघुवर-बानी । भयेउ लाभ बड़, गइ बड़ हानी ॥
हरखित हृदय मातु पहिं आयें । मनहुँ अंध फिरि लोचन पाये ॥
जाइ जननि-पग नायेउ माथा । मन रघुनन्दन-जानकि साथा ॥
पूछेउ मातु मलिन-मुख देखी । लखन कहो सब कथा बिसेखी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देख दव जनु चहुँ ओरा ॥
लखन लखेउ भा अनरथ आजू । एहि सनेह-बस करब अकाजू ॥
माँगत बिदा समय सकुचाहीं । जाइ संग, बिधि, कहहि कि नाहीं ॥

समुझि सुमित्रा राम-सिय-रूप-सुसील-सुभाउ ।

नृपसनेह लखि धुनेउ सिर पापिनि कीन्ह कुदाउ ॥३२॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी । सहज हृदय बोली मृदुबानी ॥
तात, तुम्हार मातु बैदेही । पिता राम सब भाँति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ राम-निवासू । तहँइ दिवसु, जहँ भानुप्रकासू ॥
जो पै सीय-रामु बन जाहीं । अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साई । सेइअहि सकल प्रान की नाई ॥
राम प्रानप्रिय जीवन जीके । स्वारथरहित सखा सबहीके ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँते । सब मानिअहि रामके नाते ॥
अस जिअ जानि संग बन जाहू । लेहु, तात, जग जीवन-लाहू ॥

भूरि भागभाजन भयेहु मोहि समेत बलि जाउँ ।

जो तुम्हरे मन छाँड़ि छलु, कीन्ह राम-पद ठाउँ ॥३३॥

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुपति-भगत जासु सुत होई ॥
 नतरु बाँझ भलि, बादि बिआनी । रामबिमुख सुततें हित हानी ॥
 तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं । दूसर हेतु तात, कछु नाही ॥
 सकल सुकृत-कर बड़ फल एहू । राम-सीय-पद सहज सनेहू ॥
 राग राख इरखा मद मोहू । जनि सपनेहुँ इन्हके बस हाहू ॥
 सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन-कम-बचन करहु सेवकाई ॥
 तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु-मातु राम-सिय जामू ॥
 जेहि न राम बन लहहिं कलेसू । सुत, साँइ करहु, इहइ उपदेसू ॥

मातुचरन सिर नाइ, चले तुरत संकित-हृदय ।

बागुर बिखम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भागबस ॥३४॥

२—राम-वनवास

(१)

कागर-कीर ज्यों भूखन-चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई ।
 मातु, पिता, प्रिय, लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई ॥
 संग सुभामिनि भाइ भलो दिन द्वै जनु ओध हुते पहुनाई ।
 राजिव-लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥

(२)

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूझत काढ़े ।
 जे सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत, अजा-खुर बारिधि बाढ़े ॥
 तुलसी, जिहिके पद-पंकजतें प्रगटी तटिनी जु हरै अब गाढ़े ।
 सो प्रभु स्वै सरिता तरिवे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥

(३)

एहि घाटतें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू ॥
 परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ?

तुलसी, अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू ?
वरु मारिये मोहि, बिना पग धोये हौं, नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ?

(४)

रावरे दोम न पाँयनको, पग-धूरिको भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहनतें वन-बाइन काठका कोमल है, जल खाइ रहा है ॥
पावन पाँय पखारिकै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ?
तुलसी, मुनि केवट के बर बैन हूँसे प्रभु जानकी आर हहा है ॥

(५)

पात-भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति, कछू वेद ना पढ़ाइहौं ।
सब परिवार मेरो याहि लागि, राजाजू, हौं
दीन वित्तहीन, कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ?
गौतमकी घरनी ज्यों तरनी तरेगी मेरी,
प्रभुसौं निखादि हैकै बाद न बढ़ाइहौं ?
तुलसीके ईस राम, रावरेसों साँची कहौं—
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं ।

(६)

पुरतें निकसी रघुबीर बधू धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
भलकी भरि भाल कनी जलकी, पुट सूखि गये मधुराधर वै ॥
फिरि बूझति है—चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौं कित है ।
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अतिचारुचलीं जल चवै ॥

(७)

जलको गये लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय, छाहँ घरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ॥

तुलसी, रघुबीर प्रिया-स्रम जानिकै, बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े ।
जानकीनाथ को नेह लख्यौ, पुलकौ तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ॥

(८)

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिन मैं लियो है ।
बानं कमान निखंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि-बेख कियो है ॥
संग लिये बिधु-बैनी बधू, रतिको जेहि रंचक रूप दियो है ।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहै ? सकुचात हियो है ॥

(९)

रानी मैं जानी अजानी महा, पबि-पाहनहूतें कठोर हियो है ।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तियको जिन कान कियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ये बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ।
आँखिन में सखि राखिबे जोग, इन्हें किमिकै बनबास दियो है ॥

(१०)

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल तिरीछी-सी भौहैं ।
तून सरासन बान धरे, तुलसी, बन मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरौ मन मोहैं ।
पूछति ग्राम-बधू सियसों—कहो, साँवरे-से सखि, रावरे को हैं ?

(११)

सुनि सुन्दर बैन सुधा-रस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हें समुभाय कछू मुसकाइ चली ॥
तुलसी, तेहि औसर सोहैं सबै अबलोकति लोचन लाहु अली ।
अनुराग-तड़ागमें भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली ॥

(१२)

पद कोमल, श्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाये ।
कर बान सरासन, सीस जटा, सरसीरुह लोचन सो न सुहाये ॥

जिन देखे अली, सत भायहुँतें, तुलसी तिन तौ मन फेरि न पाये ।
यह मारग आजु किसोर-बधू बिधु-बैनी समेत सुभाय सिधाये ॥

(१३)

बिंध्यके बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे ।
गौतम तीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनि-वृन्द सुखारे ॥
ह्वैहैं सिला सब चंदमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे ।
कीन्ही भली, रघुनायकजू, करुना करि काननकों पगु धारे ॥

३—चातक-प्रेम-वर्णन

एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास ।
एक-राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ॥ १ ॥
जो घन बरखै समय सिर, जो भरि जनम उदास ।
तुलसी याचक चातकहि, तऊ तिहारी आस ॥ २ ॥
चातक तुलसी के मते, म्वातिहु पियौ न पानि ।
प्रेम-तृखा बाढ़ति भली, घटे घटेगी आनि ॥ ३ ॥
रटत-रटत रसना लटी, तृखा सूखिगे अंग ।
तुलसी, चातक-प्रेम की, नित नूतन रुचि-रंग ॥ ४ ॥
चढ़त न चातक चित कबहुँ, प्रिय पयोदके दोख ।
तुलसी, प्रेम पयोधिकी, तातें नाप न जोख ॥ ५ ॥
बरखि परुख पाहन पयद, पंख करौ टुक टूक ।
तुलसी, परी न चाहिये, चतुर चातकहि चूक ॥ ६ ॥
उपल बरखि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर ? ॥ ७ ॥
पबि, पाहन, दामिनि, गरज, भरि भकोर खरि खीभि ।
रोख न प्रीतम दोख लखि, तुलसी रामहि रीभि ॥ ८ ॥

मान राखिबो, माँगिबो, पियसो नित-नित नेहु ।
 तुलसी, तीनिउ तब फवै, जौ चातक मत लेहु ॥९॥
 तुलसी, चातक माँगना, एक सबै घन दानि ।
 देत जो भू-भाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि ॥१०॥
 तीनि लोक तिहुँ काल जस, चातकही के माथ ।
 तुलसी जासु न दीनता, सुनी दूसरे नाथ ॥११॥
 प्रीति पपीहा पयदकी, प्रगट नई पहिचानि ।
 जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि ॥१२॥
 नहि जाचक, नहि संगही, सीस नाथ नहि लेइ ।
 ऐसे मानी माँगनेहि, को बारिद बिनु देइ ॥१३॥
 साधन साँसति सब सहत, सबहि सुखद फल लाहु ।
 तुलसी, चातक जलदकी, रीझि बूझि बुधि काहु ॥१४॥
 जीव चराचर जहँ लगे, है सबको हित मेहु ।
 तुलसी, चातक मन बस्यो, घनसों सहज सनेहु ॥१५॥
 डोलत बिपुल बिहंग बन, पियत पोखरनि बारि ।
 सुजल धवल चातक नवल, तुही भुवन दस-चारि ॥१६॥
 बध्यो बधिक, परयो पुन्य जल, उलट उठाई चोंच ।
 तुलसी चातक प्रेम-पट, मरतहु लगी न खोंच ॥१७॥
 तुलसी चातक देत सिख, सुतहि बार ही बार—
 तात न तर्पन कीजियो, बिना बारिधर-धार ॥१८॥
 उष्णकाल, अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख ।
 चातक बतियाँ ना रुची, अन जल सींचे रुख ॥१९॥

मीराँबाई

पूर्व-माध्यमिक काल—सगुण धारा (कृष्ण-शाखा)

[मीराँबाई—जोधपुर राज्यके संस्थापक राठौर-वीर जोधाजीकी प्रपौत्री एवं प्रसिद्ध महाराणा साँगाके ज्येष्ठ-पुत्र कुँवर भोजराजकी स्त्री थीं । चित्तौड़-रक्षक प्रसिद्ध वीर और भक्त जयमल उनके चचेरे भाई थे । उनका जन्म मेड़ता जागीरके चौकड़ी नामक गाँवमें सं० १५५५ के लगभग हुआ था । उनका देहान्त सं० १६०१ के लगभग माना जाता है । मीराँबाई बचपनसे ही श्रीकृष्णकी भक्ति करती थीं । कुँवर भोजराजका देहान्त उनके पिताके सामने ही हो गया और मीराँबाई युवावस्थामें ही विधवा हो गईं । पति-सेवासे वञ्चित होकर उन्होंने अपना समस्त ध्यान कृष्ण-भक्तिकी ओर लगा दिया तथा साधु-सन्तोंका सत्संग भी करती रहीं । यह बात उनके देवर, और तत्कालीन महाराणा, रतनसिंह तथा विक्रमाजीतको अच्छी न लगी और वे मीराँबाई-को अनेक प्रकारसे सताने लगे । उन्हें विषपान कराया गया, पर भगवत्कृपासे उनका बाल भी बाँका न हुआ । अन्तमें वे मेवाड़को छोड़कर तीर्थ-यात्राको निकल गईं और फिर द्वारिकामें स्थायीरूपसे रहने लगीं और वहीं उनका देहान्त हुआ । प्रसिद्ध भक्त रैदास उनके गुरु थे । मीराँबाई उच्चकोटिकी भक्त-कवि हैं । हिन्दीकी स्त्री-कवियोंमें उनका स्थान सबसे उँचा है । उनकी रचना का प्रचार भी बहुत हुआ । स्त्री-समाजमें, विशेषतः राजस्थान में, उनके बनाये भजनोंका बहुत प्रचार है । उनमें हृदयकी मर्मस्पर्शिनो वेदना, दिलकी बेकली और प्रेममय तल्लीनता भरी है । उनके हृदयमें आराध्यदेवके प्रति जो अगाध प्रेम था, वह प्रत्येक पदसे टपका पड़ता है । भाषा की सरलता और भावोंकी तन्मयता उनकी कविताका विशेष गुण है । उनकी कविताकी भाषा राजस्थानी और ब्रजभाषा है, जो बहुत ही सुगम है ।]

पद

(१)

बसौ मोरे नैनन में नँदलाल ।

मोहनी मूरति, साँवरी सूरति नैना बने बिसाल ॥
मोर-मुगट. मकराकृत कुंडल, अरुण तिलक दिये भाल ।
अधर-सुधा-रस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल ॥
छुद्रघण्टिका कटितटि सोभित, नूपुर-सबद रसाल ।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई भगत-बछल गोपाल ॥

(२)

चलो, मन, गंगा-जमना तीर ।

गंगा जमना निरमल पानी, सीतल होत सरীর ।
बंसी बजावत, गावत, कान्हो संग लियाँ बलवीर ॥
मोर-मुगट पीताम्बर सोहै, कुण्डल झलकत हीर ।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर चरण-कँवलपै सीर ॥

(३)

या ब्रज में कछु देख्यौ री दोना ।

लै मटकी सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नँदजीकै छोना ।
दधिको नाम बिसरि गयो प्यारी, 'ले लेहु री कोई स्याम सलोना' ॥
बिन्द्रावन की कुंज-गलिन में नेह लगाइ गयो मनमोहना ।
मीराँके प्रभु गिरधर नागर सुन्दर स्याम सुघर रस-लोना ॥

(४)

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई ।

जाके सिर मोर-मुगट मेरो पति सोई ॥

छाँड़ दई कुलकी कानि कहा करिहै कोई ?
 संतन ढिंग बैठि-बैठि लोक-लाज खोई ॥
 अँसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई ।
 दधि मथि घृत काढ़ि लियो, डारि दई छोई ॥
 भगत देखि राजी हुई, जगत देखि रोई ।
 दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोई ॥

(५)

म्हारा ओलगिया घर आया ।
 तनकी ताप मिटी, सुख पाया, हिलमिल मंगल गाया ।
 घनकी धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आनँद आया ॥
 मगन भई मिलि प्रभु अपनासूँ, भौका दरद मिटाया ।
 चंदकूँ देखि कँमोदनि फूलै, हरख भया मेरी काया ॥
 सब भगतनका कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया ।
 मीराँ बिरहनि सीतल हाँई दुख-दुँद दूर न्हसाया ॥

(६)

नहिं ऐसो जनम बारम्बार ।
 का जानूँ, कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार ।
 बढ़त पल-पल, घटत छिन-छिन, जात न लागै बार ॥
 बिरछके व्यों पात टूटे बहुरि न लागै डार ।
 भौ-सागर अति जार कहिये, अनंत ऊँडी धार ॥
 राम-नामका बाँध बेड़ा, उतर परले पार ।
 ज्ञान-चौसर मँडी चोहटे, सुरत पासा सार ॥
 या दुनियाँमें रची बाजी, जीत भावें हार ।
 साधु-संत-महंत-ज्ञानी चलत, करत पुकार ॥
 दासी मीराँ, लाल गिरधर, जीवना दिन च्यार ॥

(७)

मन रे, परसि हरिके चरन ।

सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिविध-ज्वाला हरन ॥
 जिन चरन प्रह्लाद परसे इन्द्र-पदवी धरन ॥
 जिन चरन ध्रुव अटल कीने राखि अपनी सरन ।
 जिन चरन ब्रह्मांड भेंख्यो नख-सिख सिरी-धरन ।
 जिन चरन प्रभु परस लीने तरी गोतम-धरन ।
 जिन चरन कालीनाथ नाथ्यो गोप-लीला करन ॥
 जिन चरन गोबरधन धरयो इन्द्र को प्रब हरन ।
 दासी मीराँ, लाल गिरधर, अगम तारन-तरन ॥

(८)

भज मन, चरन-कँवल अविनासी ।

जेताइ दीसै धरण-गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी ।
 इस देही का गरब न करना. माटी में मिल जासी ॥
 कहा भयो तीरथ व्रत कीने, कहा लिये करबत कासी ?
 कहा भयो है भगवा पहरयाँ घर तज भये संन्यासी ?
 जोगी होइ जुगत नहिं जानी, उलट जनम फिर आसी ।
 अरज करौ अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी ।
 मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो जमकी फाँसी ॥

नरोत्तमदास

पूर्व माध्यमिक काल

[नरोत्तमदास—ब्राह्मण थे । वे सीतापुर जिलेके बाड़ी नामक कस्बे के रहनेवाले थे । उनका समय सं० १५१० से सं० १६०२ तक माना जाता है । उन्होंने सुदामा-चरित्र और ध्रुव-चरित्र नामक दो पुस्तकें लिखी थीं । सुदामा-चरित्र सं० १५८२ में लिखा गया था । यद्यपि यह छोटा है ; परन्तु इसकी कविता बहुत ही सरल, भावपूर्ण और हृदयग्राहिणी है और इसके वर्णन सर्वथा स्वाभाविक हैं । घरकी दरिद्रता-का चित्र इसमें बहुत सुन्दर खींचा गया है । यह काव्य ब्रजभाषामें है । इसकी भाषा विशुद्ध, परिमार्जित एवं व्यवस्थित है और भर्तीके शब्द या वाक्य इसमें नहीं पाये जाते । शिवसिंहसरोजके लेखकने इस कविके विषयमें लिखा है—‘सुदामा-चरित्र बनाया है मानो प्रेम-समुद्र बहाया है ।’]

सुदामा-चरित्र

सुदामा-पत्नी—

लोचन-कमल दुख-मोचन तिलक भाल,
 स्रवननि कुण्डल, मुकुट धर माथ हैं ।
 ओढ़े पीत-वसन गलेमें बैजयंती-माल,
 संख, चक्र, गदा और पद्म लिये हाथ हैं ॥
 कहत नरोत्तम, संदीपन गुरुके पास—
 तुमही कहत,—हम पढ़े एक साथ हैं ।
 द्वारिकाके गये हरि दारिद हरेंगे, पिय,
 द्वारिकाके नाथ वे अनाथनके नाथ हैं ॥१॥

सुदामा—

सिच्छक हौं सिंगरे जगको, तिय, ताका कहा अब देति है सिच्छा ।
 जे तप कै परलोक सुधारत, संपत्तिकी तिनके नहिं इच्छा ॥
 मेरे हिये हरिके पद-पंकज, बार हजार लै देखु परिच्छा ।
 औरनको धन चाहिए, बावरि, बाँभन को धन केवल भिच्छा ॥२॥

सुदामा-पत्नी—

दानी बड़े तिहूँ लांकनमें जग जीवत नाम सदा जिनको लै ।
 दीननकी सुधि लेत भली बिधि, सिद्ध करौ प्रभु, मेरो मतो लै ॥
 दीनदयाल के द्वार न जात सो औरके द्वार पै दीन हूँ बोलै ।
 श्रीजदुनाथ से जाके हितू सो तिहूँ पन क्यों कन माँगत डोलै ॥३॥

सुदामा—

छत्रिन के पन जुद्ध, जुवा दल साजि चढ़े गज-बाजिनहीं ।
 बैसको बानिज और कृषी पन सूद्रको सेवन साजनहीं ॥

बिप्रन को पन है जु यही, सुख-सम्पतिसों कछु काज नहीं ।
कै पढ़िबो कै तपोधन है, कन माँगत बाँभनै लाज नहीं ॥४॥

सुदामा-पत्नी—

कोदो-सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौती ।
सीत बितीतत जो सिसियात ही, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती ॥
जौ जनती न हितू हरि-से तौ मैं काहेको द्वारिका पेलि पठौती ।
या घरतें कबहूँ न गयो पिय, टूटो तवा अरु फूटी कठौती ॥५॥

सुदामा—

छाँड़ि सबै जक तोहि लगी बक आठहुँ जाम, यहै मन ठानी ।
जातहि देहैं लदाय लदा भरि, लेहौ लदाय यहै जिय जानी ॥
पैये कहाँतें अटारी अटा जिनको बिधि दीन्ही है टूटी-सी छानी ।
जो पै दरिद्र लिलाट लिख्यो, तौपै काहुके मेटे न जात अयानी ॥६॥

सुदामा-पत्नी—

फाटे पट, टूटी छानि, खायो भीख माँगि आनि,
बिना जग्य बिमुख रहत देव-पित्रई ।
वे हैं दीनबन्धु, दुखी देखिके दयाल हैहैं,
देहैं कछु भलो, सो हौ जानत अग्रत्रई ?
द्वारिका लौ जात, पिय केतो अलसात तुम,
काहे को लजात, भई कौनसी बिचित्रई ?
जौ पै सब जनम ये दरिद्र ही सतायो, तो पै
कौन काज आयहै कृपानिधिकी मित्रई ? ॥७॥

सुदामा—

तैं तौ कही नीकी, सुनि बात हितहीकी, यह
रीति मित्रईकी नित प्रीति सरसाइये ।
चित्तके मिलेंते बित्त चाहिए परसपर,
मित्रके जो जेंइये तो आपहू जेंबाइये ॥

वे हैं महाराज, जोरि बैठत समाज भूप,
 तहाँ यह रूप जाय कहा सकुचाइये ?
 दुख-सुख सब दिन काटे ही बनैगी, भूलि,
 बिपति परेपै द्वार मित्रके न जाइये ॥ ८ ॥

सुदामा-पत्नी—

विप्रके भगत हरि जगत-बिदित बंधु,
 लेत सबहीकी सुधि, ऐसे महादानि हैं ।
 पढ़े एक चटसार, कही तुम कैयो बार,
 लोचन अपार वे तुम्हें न पहिचानिहैं ?
 एक दीनबन्धु, कृपासिन्धु, फेरि गुरुबन्धु,
 तुम सम कौन दीन जाको जिय जानिहैं ?
 नाम लेत चौगुनी, गयेतें द्वार सौगुनी,
 बिलोकत सहसगुनी प्रीति प्रभु मानिहैं ॥ ९ ॥

सुदामा—

प्रीति में चूक न है उनके, हरि मो मिलिहैं उठि कण्ठ लगायकै ।
 द्वार गये कछु दैहैं भलो हमें, द्वारिकानाथ जु हैं सब लायकै ॥
 या बिधि बीति गये पन द्वै, अब तौ पहुँचौ बिरधापन आयकै ।
 जीवन केतो है जाके लिए हरिसों अब होहुँ कनावड़ो जायकै ? ॥ १० ॥

सुदामा-पत्नी—

हूँ जै कनावड़ो बार हजार लौ, जौ हितू दीनदयाल सो पाइये ।
 तीनहु लोकके ठाकुर हैं, तिनके दरबार न जात लजाइये ॥
 मेरी कही जियमें धरि कै, प्रिय और न भूलि प्रसंग चलाइये ।
 और के द्वारसों काज कहा, प्रिय द्वारिकानाथके द्वारे सिधाइये ॥ ११ ॥

सुदामा—

द्वारिका जाहु जू, द्वारिका जाहु जू, आठहु जाम यहै जक तेरे ।
 जौ न कहौ करिये तो बड़ो दुख, जैये कहाँ अपनी गति हेरे ?

द्वार खड़े प्रभुके छड़िया, तहँ भूपति जान न पावत नेरे ।
पाँच सुपारि, तैं देखु बिचारिकै, भेंटको चारि न चाउर मेरे ॥१२॥

यह सुनिकै तब ब्राह्मनी गई परोसिनि पास ।
पाव सेर चाउर लिये आई सहित हुलास ॥१३॥
सिद्धि करी गनपति सुमिरि, बाँध दुपटिया खूँट ।
माँगत खात चले तहाँ मारग बालो-बूट ॥१४॥

× × × ×

द्वारपाल —

सीस पगा न भगा तनमें, प्रभुजानै को आहि, बसै केहि ग्रामा ।
धोती फटी-सी, लटी दुपटी, अरु पाँयउपानहकी नहिं सामा ॥
द्वार खड़यो द्विज दुर्बल, देखि रह्यो चकिसो बसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयालुको धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा ॥१५॥

बोल्यो द्वारपालक सुदामा नाम पाँड़े सुनि,
छाँड़े राजकाज, ऐसे जीकी गति जानै को ?
द्वारिकाके नाथ हाथ जोरि, दौरि गहे पाँय,
भेंटे लपटाय करि, ऐसे दुख सानै को ?
नैन दोउ जल भरि पूछत कुसल हरि,
बिप्र बोल्यो,—बिपदामे मोहि पहिचानै को ?
जैसी तुम कीनी तैसी करै को कृपाके सिंधु,
ऐसी प्रीति, दीनबन्धु, दीननसों मानै को ? ॥१६॥

ऐसे बिहाल बेवाइनसों पग, कंटक-जाल लगे पुनि, जोये—
हाय ! महादुख पायो सखा, तुम आये इतै न कितै दिन खोये ?
देखि सुदामाकी दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोये ।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैननिके जलसों पग धोये ॥१७॥

तंदुल तिय दीन्हे हुते, आगे धरियो जाय ।
देखि राज-संपत्ति-बिभव, दै नहि सकत लजाय ॥१८॥

श्रीकृष्ण—

कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत ।
चाँपि गाँठरी काँख में, रहे कहो किहि हेत ॥१९॥

आगे चना गुरु मातु दये, ते लये तुम चाबि हमें नहि दीने ।
स्याम कही मुसकाय सुदामासों, चोरीकी बानि में हौ जु प्रबीने ॥
गाँठरि काँखमें चाँपि रहे तुम, खोलत नाहिं सुधारस भीने ।
पाछिली बानि अजौ न तजी तुम, तैसई भाभीके तंदुल कीने ॥२०॥
तंदुल माँगत मोहन, बिप्र सँकोचतें देत नहीं अभिलाखे ।
है नहि पास कछू कहिकै तेहि गोपि घनी बिधि काँखमें राखे ॥
सो लखि दीनदयालु तहाँ, यह चोरी करी तुम-यों हँसि भाखे ।
खोलिकै पोट अछोट मुठी गिरधारन चाउर चाउसों चाखे ॥२१॥

रुक्मिणी—

हाथ गह्यो प्रभुको कमला, कहै, नाथ ! कहा तुमने चित धारी ।
तंदुल खाय मुठी दुइ, दीन कियो तुमने दुइ-लोक-बिहारी ॥
खाय मुठो तिसरी अब, नाथ कहाँ निज बासकी आस बिसारी ।
रंकहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी ॥२२॥

श्रीकृष्ण—

धन्य कहा कहिये, द्विजजू, तुम-सो जग कौन उदार प्रबीनो ।
पाछिली प्रीति निबाही भली बिधि, दोषनिवारिकै रोस न कीनो ॥
हौं द्विजके चरनोदक हेतु अजन्म कहायकै जन्म सु लीनो ।
आवनकै निज पावनसों यहाँ, मो-सो अपावन पावन कीनो ॥२३॥

परम कृपा दिन-दिन करी कृपानाथ जदुराय ।

मित्र-भावना बिसतरी, दूनो आदर-भाय ॥२४॥

देनो हुतो सो दे चुके, बिप्र न जानी गाथ ।
चलती बेर गुपालजी, कछू न दीनो हाथ ॥२५॥
गापुर लौं पहुँचायकै, फिरे सकल दरबार ।
मित्र-बिजोगी कृष्णके, नेत्र चली जल-धार ॥२६॥

सुदामा—

वह पुलकनि, वह उठि मिलनि, वह आदरकी भाँति ।
यह पठवनि गोपालकी, कछू न जानी जाति ॥२७॥
और कहा कहिये जहाँ, कंवनहीके धाम ।
निपट कठिन हरिको हियो, मोकों दियो न दाम ॥२८॥
घर-घर कर ओड़त फिरे, तनक दहीके काज ।
कहा भयो जो अब भयो, हरिको राज-समाज ? ॥२९॥
हौं आवत नाहीं हुतौ, बामहिं पठयौ ठेलि ।
अब कहिहौं समुझायकै, धन-धन धरौ सकेलि ॥३०॥
इमि सोचत-सोचत भक्त, आयो निज पुर-तीर ।
दीठि परी इक बारही, हय गयंदकी भीर ॥३१॥

बैसेइ राज-समाज, बेई गज-बाजि घने, मन संभ्रम छायो—
कैधों परयो कहूँ मारग भूलिकै, कै अब फेरि हौं द्वारिका आयो ॥
मौन बिलोकिये कों मग लोचन सींचत ही सब गाँव मझाओ ।
रूखि भे पाँड़े कथा सबको फिरि, भोंपरिको कहूँ सोधु न पायो ॥३२॥

सुदामा—

जगर-मगर जोति छाय रही चहुँ दिसि,
अगर-बगर हाथी-घोड़नको सोर है ।
चौपरको बनो है बजार, पुनि सोननके,
महल, दुकाननकी कतार चहुँ ओर है ॥

भीड़-भाड़, धकापेल चहुँ दिसि देखियत,
 द्वारिकातैं दूनो यहाँ प्यादेनको जोर है ।
 रहिबेको ठाम है न काहूसों पिछान मेरी,
 बिन जाने बसे कोऊ हाड़ मेरे तोरहै ॥३३॥

फूटी एक थारी, बिन टोटनीकी झारी हुती,
 बाँसकी पिटारी, औ कथारी हुती टाटकी ।
 बेंटे बिनु छुरी, औ कमंडलु हौ, टोकवो हौ,
 दूटो हुतो पाया, पाटी दूटी एक खाटकी ॥
 पथरौटा, काठकां कठौता, कहुँ दीसै नाहिं,
 पीतर को लोटा हौ, कटोरी है न बाटकी ।
 कामरी फटी-सी हुती, डोंडनकी माला ताक,
 गोमती की माटीकी न सुध कहुँ माटकी ॥३४॥

चौतरा उजारि कोऊ चामीकार-धाम कियो,
 छानी तो उपारि डारी, छाई चित्रसारी जू ।
 जो हौं होतो घर तौ पै काहे को उठन देतो,
 होनहार ऐसी, खोटी दसा ही हमारी जू ॥
 हौं तो हो न, काहू लोभ-लाहुको दिखाय वाहि,
 महल उठाय लयो, हाय ! सुखागारी जू ।
 लामी-लूमवारी, दुख-भूख को दलनहारी,
 गैया बनवारी काहू सोऊ मारि डारी जू ॥३५॥

कही बाँभनी आयके—‘यहै कंथ निज गेह ।
 श्रीजदुपति तिहुँ लोकमें कीन्हों प्रगट सनेह’ ॥३६॥

दूटी-सी मड़ैया मेरी परी हुती, याही ठौर,
 तामैं परो दुख काटौं कहाँ हेम-धाम, री ?

जेवर जराऊ तुम साजे प्रति अंग-अंग,
 सखी सोहैं संग, वह छूछी हुती छाम, री ॥
 तुम तौ पटंबर री ओढ़े हौ किनारीदार,
 सारी जरतारी, वह ओढ़े कारी कामरी ।
 मेरी वा पँडाइन तिहारी अनुहार ही पै,
 बिपदा-सताई वह, पाई कहाँ पामरी ॥३७॥

समुझायौ निज कंतको, मुदित गई लै गेह ।
 अन्हवायो तुरतहि उबटि, सुचि सुगन्धसों देह ॥३८॥
 उठे पहिरि अंबर रुचिर सिंहासन पर आय ।
 बैठे, प्रभुता देखिके सुरपति रह्यो लजाय ॥३९॥

कै वह टूटी-सी छानी हुती, कहँ कंचनके सब धाम सुहावत ।
 कै पगमें पनही न हुती, कहँ लै गजराजहि ठाढ़े महावत ॥
 भूमि कठोरपै रात कटै, कहँ कोमल सेजपै नींद न आवत ।
 कै जुरतो नहिं कोदो-सवाँ, प्रभु के परतापतें दाख न भावत ॥४०॥

बिप्र सुदामा, सहित तिय, उमगे परमानन्द ।
 नित-प्रति सुमिरन करत हैं, हिय धरि करुना-कंद ॥४१॥

बिहारीलाल

उत्तर-माध्यमिक काल—रीति-युग

[बिहारीलाल—चौबे ब्राह्मण थे । उनका जन्म ग्वालियरके पास बसुआ-गोविन्दपुर नामक गाँवमें सं० १६६० के लगभग हुआ था । उनकी मृत्यु सं० १७२० के लगभग हुई मानी जाती है । वे जयपुरके महाराज जयसिंह (बड़े) के दरबार में रहते थे, जहाँ उनका बड़ा सम्मान था । उनको एक-एक दोहे पर एक-एक अशर्फी मिला करती थी । बिहारी रीति-युगके सर्वोत्तम कवि समझे जाते हैं । उनका सर्व-प्रसिद्ध ग्रन्थ बिहारी-सतई है, जिसमें लगभग ७०० दोहोंका संग्रह है । इस ग्रन्थका जनतामें बहुत प्रचार हुआ और इसपर पचासों टीकाएँ हो चुकी हैं । संस्कृत और उर्दूमें भी इसका अनुवाद हो गया है । बिहारी-सतसई एक मुक्तक काव्य है, जिसमें विविध विषयक फुटकर दोहोंका संग्रह है । अधिकांश दोहे शृङ्गार-रसके हैं । प्रत्येक दोहे में एक-एक चित्र-सा खींचा गया है । नीति और वैराग्यके भी कुछ दोहे उसमें हैं । छोटे-से दोहेमें बहुत बड़ा भाव भर देना, यह बिहारीकी विशेषता है । ग्रन्थकी भाषा ब्रजभाषा है, जो चलती और स्वाभाविक है ।]

दोहे

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
 जा तनकी भाई परे, स्यामु हरित-दुति होइ ॥१॥
 सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल ।
 इहि बानक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल ॥२॥
 जम-करि-मुँह तरहरि परया, इहि धरिहरि चित लाउ ।
 बिषय-तृषा परिहरि अजौ, नरहरिकै गुन गाउ ॥३॥
 भजन कह्यौ तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार ।
 दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ गँवार ॥४॥
 दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईहि न भूलि ।
 दर्ई-दर्ई क्यों करतु है ? दर्ई दर्ई सु कबूलि ॥५॥
 दियौ सु सीस चढ़ाइ ले, आछी भाँति अएरि ।
 जापैं सुख चाहतु लियौ, ताके दुखहि न फेरि ॥६॥
 को कहि सकै बड़ेनुसां, लखैं बड़ीयौ भूल ।
 दीने दर्ई गुलाबकी, इन डारनु वे फूल ॥७॥
 कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ ।
 जगतु तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ ॥८॥
 जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार ।
 अब, अलि, रही गुलाबकी, अपत कटीली डार ॥९॥
 इही आस अटक्यो रह्यो, अलि गुलाबकै मूल ।
 कहै है फेरि बसन्त रितु, इन डारनु वे फूल ॥१०॥

मरतु प्यास पिंजरा परयो, सुआ समैके फेर ।
 आदरु दै-दै बोलियतु, बाइसु बालिकी बेर ॥११॥
 वे न यहाँ नागर बढी, जिन आदर तो आव ।
 फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गँवई गाँव-गुलाब ॥१२॥
 कर लै. सूँधि, सराहि कै. सबै रहे गहि मोन ।
 गन्धी गन्ध गुलाबकौ, गँवई गाहक कौन ? ॥१३॥
 करि फुलेलको आचमन, मीठो कहत सराहि ।
 रे गन्धी मति-अन्ध, तू, अतर दिखावत काहि ? ॥१४॥
 चलयौ जाइ. ह्याँ को करै. हाथिनुकैं व्यापार ।
 नहिं जानत, या पुर बसैं. धोबी, ओढ़, कुँभार ॥१५॥
 दिन दस आदरु पाइकै, करिलै आपु बखान ।
 जौं लगि, काग. सराध-पखु, तौं लगि तो सनमान ॥१६॥
 इक भीजैं चहलैं परैं, बूड़ैं. बहैं हजार ।
 किते न औगुन जग करै, बै-ने चढ़ती बार ? ॥१७॥
 स्वारथ सुकृत न, स्रमु वृथा. देखि बिहंग, बिचारि ।
 बाज पराये पानिपर, तू पंछीनु न मारि ॥१८॥
 बड़े न हूजै गुननु बिनु, बिरद-बड़ाई पाइ ।
 कहत धतूरेसों कनक, गहनों गढ़यौ न जाइ ॥१९॥
 गुनी-गुनी सबकैं कहे, निगुनी गुनी न होत ।
 सुन्यौ कहूँ तरु अरकतें, अरक समान उदोत ॥२०॥
 बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमानु ।
 भलौ भलौ कहि छौड़ियै, खोटे ग्रह जप-दान ॥२१॥
 बुरौ बुराई जो तजै, तो चितु खरो सकातु ।
 ज्यौँ निकलंकु मयंकु लखि, गनै लोग उतपातु ॥२२॥

जाकैं एकाएक हूँ, जग ब्यौसाइ न कोइ ।
 सो निदाघ फूले फलै, आकु डहडहौ होइ ॥२३॥
 को न छल्यौ इहि जाल परि, कत, कुरंग अकुलात ।
 ज्यौ-ज्यौ सुरभि भज्यो चहत, त्यों-त्यों उरभत जात ॥२४॥
 अति अगाध अति औथरौ, नदी कूप सर बाइ ।
 सो ताकौ सागरु, जहाँ, जाकी प्यास बुझाइ ॥२५॥
 चित दै देखि चकोर त्यों, तीजैं भजै न भूख ।
 चिनगी चुगै अंगारकी, चुगै कि चन्द मयूख ॥२६॥
 या अनुरागी चित्तकी, गति समुझै नहिं कोइ ।
 ज्यौ-ज्यौ बूढ़ै स्याम रँग, त्यों-त्यों उज्जलु होइ ॥२७॥
 इन दुखिया अखियानकौ, सुख सिरज्यौई नाहिं ।
 देखैं बनें न देखतैं, अनदेखैं अकुलाहिं ॥२८॥
 अलि इन लोचनकौं कछू, उपजी बड़ी बलाइ ।
 नीर भरे नित प्रति रहैं, तरु न प्यास बुझाइ ॥२९॥
 नाचि अचानक ही उठे, बिनु पावस बन मोर ।
 जानाति हौं, नन्दित करी, यह दिसि नन्दकिसोर ॥३०॥
 बतरस-लालच लालकी, मुरली धरी लुकाइ ।
 सौह करै भौहन हँसे, दैन कहै नटि जाइ ॥३१॥
 चिरजीवौ जोरी, जुरै, क्यों न सनेह गँभीर ।
 को घटि ? ए वृषभानुजा, वे हलधरके वीर ॥३२॥
 तौ लगि या मन-सदनमें, हरि आवैं केहि बाट ।
 बिकट जटे जौं लगि निपट, खुलैं न कपट-कपाट ? ॥३३॥
 यह बिरिया नहिं औरकी, तू करिया वह सोधि ।
 पाहन नाव चढ़ाइ जिन, कीने पार पयोधि ॥३४॥

कबको ढेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ ।
 तुमहूँ लागी, जगत-गुरु, जगनाइक, जग-बाइ ! ॥३५॥
 थोरेई गुन रीभते, बिसराई वह बानि ।
 तुमहूँ कान्ह, मनौ भये, आज-काल्हिके दानि ॥३६॥
 बंधु भए का दीनके, को तारथौ रघुराई ?
 तूठे-तूठे फिरत हौ, मूठे बिरद कहाइ ॥३७॥
 तौ, बलियै, भलियै बनी, नागर नन्द-किसोर ।
 जौ तुम नीकै कै लख्यौ, मो करनीकी ओर ॥३८॥
 कोऊ कोटिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार ।
 मो संपति जदुपति सदा, बिपति - बिदारनहार ॥३९॥
 मन-मोहनसौँ मोहु करि, तूँ घनस्याम निहारि ।
 कुंज-बिहारी सौँ बिहरि, गिरधारी उर धारि ॥४०॥

भूषण

उत्तर-माध्यमिक काल

[भूषण—कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनका जन्म कानपुर जिलेके तिकर्वापुर नामक गाँवमें सं० १६७० के लगभग हुआ था। उनका देहान्त सं० १७७२ में माना जाता है। हिन्दीके प्रसिद्ध कवि चिन्तामणि और मतिराम उनके भाई थे। भूषण विशेषकर छत्रपति महाराज शिवाजीके दरबारमें रहे। वहाँ उनका बड़ा आदर था। पन्नाके महाराज छत्रसाल भी उनका बड़ा आदर करते थे और कदाचित् भूषण उनके दरबारमें भी रहे हों। भूषण सच्चे जातीय कवि थे। हिन्दू-जातिका अभिमान उनकी रग-रगमें भरा था। उसका अधःपतन एवं दासत्व उनको असह्य था; इसलिए उन्होंने हिन्दू-जातिके उन्नायक वीर-नरेशोंके आश्रयमें रहकर उन्हींकी प्रशंसामें काव्य-रचना की। शिवाजी और छत्रसालके रूपमें उन्हें अपनी कविताके लिए मनोनुकूल नायक भी मिल गये। उस कालमें हिन्दीमें शृंगार-रसकी कविताका प्राधान्य हो रहा था; पर भूषणने वीर-रसको ही अपनाया। उनकी कविता ओजस्विनी एवं वीर-दर्पसे परिपूर्ण है। उन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा केवल कवि-प्रथाका गालन करनेके लिए ही नहीं की है; किन्तु वह सच्चे हृदयसे निकली है! उसको पढ़ते समय वीर-रसका अटूट प्रवाह बह चलता है और हृदय उत्साहसे भरकर उछलने लगता है। हृदयकी तंत्री झनझना उठती है और भावना रणक्षेत्रकी तलवारोंपर नाचने लगती है। ब्रज-जैसी मधुर एवं सुकोमल भाषामें भी उन्होंने सफलता-पूर्वक वीर-काव्यकी रचना की। इनके मुख्य ग्रन्थ शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी और छत्रसाल-दशक हैं।]

१—शिवाजी की प्रशंसा

(१)

इन्द्र जिमि जंभपर, बाड़व सुअंभपर,
 रावन सदंभपर रघुकुल-राज है ।
 पौन बारिबाहपर, संभु रतिनाहपर,
 ज्यौँ सहसबाहुपर राम द्विजराज है ॥
 दावा द्रुम-दण्डपर, चीता मृगभुण्डपर,
 'भूखन' बितुंडपर जैसे मृगराज है ।
 तेज तम-अंसपर, कान्ह जिमि कंसपर,
 त्यों मलिच्छ-बंसपर सेर सिवराज है ॥

(२)

सबनके ऊपर ही ठाढ़ो रहिबेके जोग,
 ताहि खरो कियो छ-हजारनिके नियरे ।
 जानि गैरमिसिल, गुसीले गुसा धारि उर,
 कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे ॥
 'भूखन' भनत महाबीर बलकन लाग्यो,
 सारी पातसाहीके उड़ाये गये जियरे ।
 तमकतें लाल मुख सिवाकां निरखि भयो,
 स्याह मुख नौरंग, सिपाह मुख-पियरे ॥

(३)

चकित चकत्ता चौकि-चौकि उठै बार-बार,
 दिल्ली दहसति, चितै चाह करखति है ॥

बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर-पति,
 फिरत फिरंगिनकी नारी फरकति है ॥
 थरथर काँपत कुतुबसाहि गोलकुंडा,
 हहरि हवस भूप भीर भरकति है ।
 राजा सिवराज के नगारनकी धाक मुनि,
 केते पातसाहन की छाती दरकति है ॥

(४)

पूरबके, उत्तरके, प्रचल पछाँह हू के,
 सब बादशाहनके गढ़ कोट हरते ।
 'भूखन' कहै यों अवरंगसों बजीर, जीति
 लेवेको पुरतगाल सागर उतरते ॥
 सरजा सिवापर पठावत मुहीम काज,
 हजरत, हम मरबेकौ नहीं डरते ।
 चाकर हैं. उजुर कियौ न जाय नेक पै,
 कछु दिन उबरते तौ घने काज करते ॥

(५)

जोर करि जैहैं अब अपर-नरेश पर,
 तोरि अरि खंड-खंड सुभट समाज-पै ।
 'भूखन' असाम रूप बलकबुखारे जैहैं,
 जैहैं साम, चीन तरि जलधि जहाज-पै ॥
 सब उमरावनकी हठ कूरताई देखो,
 कहैं नवरङ्गजेब साहि सिरताज-पै ।
 भीख माँगि खेहैं, बिन मनसब रेहैं, पै न
 जैहैं, हजरत, महाबली सिवराज-पै ॥

(६)

दाराकी न दौरि यह, रारि नहिं खजुबै की,
 बाँधिबो नहीं है मुरादिसाह बालको ।
 मठ बिस्वनाथको न बास ग्राम गोकुलको,
 देविको न देहरा न मन्दिर गोपाल को ॥
 गाढ़े गढ़ लीन्हें, अरु बैरी कतलाम कीन्हें,
 ठौर-ठौर हासिल उगाहत है सालको ।
 बूझति है दिल्ली सां सम्हारै क्यों न दिल्लीपति,
 धक्का आनि लग्यां सिवराज महाकालको ॥

(७)

लाज धरौ, सिवजूसों लरौ, सब सैयद सेख पठान पठायकै ।
 'भूखन' ह्याँ गढ़-कोटन हारे, उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसायकै ॥
 हिन्दुन के पतिसों न बिसात, सतावत हिन्दु गरीबन पायकै ।
 लीजै कलंक न, दिल्लीके बालम, आलम आलमगीर कहायकै ॥

(८)

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी
 ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं ।
 कंदमूल भोग करें, कंदमूल भोग करें,
 तीन बेर खातीं वै तीन बेर खाती हैं ॥
 भूखन सिथिल अंग, भूखन सिथिल अंग,
 बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं ।
 'भूखन' भनत वीर सिवराज तेरे त्रास
 नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं ॥

(९)

मालवा, उजैन, भनि 'भूखन', भेलास ऐन,
 सहर सिराज लों परावने परत हैं ।

गांडवानो, तिलंगानो, फिरंगानो, करनाट,
 रुहिलानो रुहिलनि हिये हहरत हैं ॥
 साहिके सपूत सिवराज, तेरी धाक सुनि,
 गढ़पति वीर तेऊ धीर न धरत हैं ।
 बीजापुर, गोलकुंडा, आगरा, दिल्लीके कोट
 बाजे-बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं ॥

(१०)

साजि चमू जनि जाहु सिवापर सोवत जाय न सिंह जगावो ।
 तासों न जंग जुरो, न भुजंग महाबिखके मुखमें कर नावो ॥
 'भूखन' भाखति बैरिबधू-जनि एदिल, औरंग लौं दुख पावो ।
 तासु सलाह की राह तजौ मति. नाह, दिवाल की राह न धावो ॥

(११)

माँगि पठायो सिवा कछू देस, बजीर अजानन बोलि गहे ना ।
 दौरि लियो सरजा परनालो यों, 'भूखन' जो दिन होय लगे ना ॥
 धाकसों खाक बिजैपुर भो, मुख आयगो खान खवासके फेना ।
 भै भरकी, करकी. धरकी. दरकी दिल एदिलसाह की सेना ॥

(१२)

बैर कियो सिव चाहत हो, तब लौं अरि बाह्यो कटार कठैठो ।
 योंहि मलिच्छहि छाँड़ै नहीं, सरजा मन तापर रोसने पैठो ॥
 'भूखन' क्यों अफजल्ल बचै अठपाव कै सिंहको पाँव उमैठौ ।
 बीछूके घाय धुक्योई धरक है तो लगि धाय धराधर बैठो ॥

(१३)

राखी हिंदुवानी, हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
 स्मृति औ पुरान राखे, वेद-विधि सुनी मैं ।
 राखी रजपूती, रजधानी राखी राजन की,
 धरामें धरम राख्यौ, राख्यौ गुन गुनीमें ॥

‘भूखन’ सुकवि राखी हृद् मरहठनकी ;
 देस-देस कीरति बखानी तब सुनी मैं ।
 साहिके सपूत सिवराज, समसेर तेरी,
 दिल्ली-दल दाबिकै दिवाल राखी दुनी मैं ॥

२—छत्रसालकी प्रशंसा

(१)

निकसत म्यानतें मयूखें प्रलै-भानुकी-सी
 फारैं तमतोम से गयंदन के जालको ।
 लागति लपटि कंठ बैरिनके नागिनी-सी,
 रुद्रहि रिभावै दै-दै मुंडनकी मालको ॥
 लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
 कहाँ लौं बखान करौ तेरी करबालको ।
 प्रतिभट कपट कटीले केते काटि-काटि,
 कालका-सी किलकि कलेऊ देती कालको ॥

(२)

भुज-भुजगेसकी वै संगनी भुजंगनी-सी,
 खेदि-खेदि खाती दीह दारुन दलनके ।
 बखतर पाखरन बीच धँसि जाति मीन
 पैरि पार जाति परवाह ज्यों जलनके ॥
 रैयाराय चंपतिको छत्रसाल महाराज,
 ‘भूखन’ सकत का बखान कै बलनके ।
 पच्छी पर-छीने ऐसे पर पर छीने, बीर,
 तेरी बरछीने बर छीने हैं खलनके ॥

उत्तरार्ध—अर्वाचीन कवि

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(१६०७-१६४२)

[भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—अग्रवाल वैश्य थे । वे इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीरचन्दके वंशमें थे । उनका जन्म काशीमें संवत् १६०७ वि० में हुआ । उनके माता-पिताका देहान्त उनके बचपनमें ही हो गया था । उनकी शिक्षा भली-भाँति नहीं होने पाई; पर उनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी । सं० १६२२ में उन्होंने जगन्नाथ-यात्रा की । सं० १६३६ में उदयपुरके महाराणा सज्जनसिंहजीने उन्हें मेवाड़ बुलाया । सं० १६४० में ३५ वर्षकी अवस्थामें उनका देहान्त हो गया । वे उदार विचारोंके सुधारक थे । वे अपव्ययी भी बहुत थे, जिससे उन्हें अन्तिम दिनोंमें कष्ट उठाना पड़ा ।

यद्यपि उन्होंने केवल ३५ वर्षकी उम्र पाई; पर इतनेमें ही उन्होंने नवीन हिन्दी-भाषा एवं साहित्यका निर्माण कर दिया । उनकी प्रतिभा बहुत प्रखर थी । पाँच वर्षकी उम्रमें ही उन्होंने एक दोहा बनाकर अपने पिताको सुनाया था । उनका साहित्यिक जीवन जगन्नाथ-यात्राके समयसे आरम्भ होता है । सं० १६२५ में उन्होंने विद्यासुन्दर नामक बँगला नाटकका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया, जिसके पश्चात् उनकी साहित्य-सेवा बराबर जारी रही । कविता, नाटक, कथा, इतिहास, निबन्ध आदि अनेक विषयोंपर उन्होंने बहुत कुछ लिखा । कई समाजोपयोगी संस्थाएँ उन्होंने स्थापित कीं और कई समाचार-पत्र भी निकाले ।

उस समय हिन्दीकी अवस्था बहुत हीन थी। प्राचीन कविताके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ उसमें नहीं थे। गद्य सर्वथा अवनत दशामें था और उसकी कोई निश्चित शैली न थी। लोग हिन्दीको कोई भाषा ही नहीं समझते थे। भारतेन्दुने लेखनी उठाकर हिन्दीका साहित्य-भण्डार भरा और दूसरे लोगोंको इस ओर प्रवृत्त किया। कविताके प्रवाहको उन्होंने बिलकुल बदल दिया। पुराने ढर्रेकी कविताके स्थानपर नवीन भावपूर्ण और सामयिक कविताकी रचना होने लगी। गद्यकी शैली निश्चित करके उन्होंने नवीन और विभिन्न विषयोंपर रचना की। उनमें देश-भक्तिके भाव खूब भरे थे; अतः उनकी रचनाएँ देश-भक्ति और देश-महिमाके वर्णनसे भरी पड़ी हैं। हिन्दीके समाचार-पत्रोंने उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि दी, जो सबको पसन्द हुई।

वे शुद्ध हिन्दीके पक्षपाती थे। उर्दू-हिन्दीकी खिचड़ी उन्हें पसन्द न थी। उन्होंने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनोंमें कविता की है। उनके मुख्य-मुख्य ग्रन्थोंके नाम ये हैं:—

नाटक—सत्य-हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, अन्धेरनगरी, चन्द्रावली,

भारत-दुर्दशा, भारत-जननी, नीलदेवी आदि।

काव्य—प्रेम-माधुरी, प्रेम-फुलवारी आदि।]

यमुना-छवि-वर्णन

(१)

तरनि तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये ,
भुके कूलसों जल-परसन हित मनहुँ सुहाये ।
किधौँ मुकुरमें लखत उभकि सब निज-निज सोभा ,
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल-लोभा ।
मनु आतप बारन तीरकों सिमिटि सबै छाए रहत ,
कै हरि-सेवा हित नै रहे निरखि नैन-मन सुख लहत ॥

(२)

कहुँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन ,
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लागि रहि पाँतिन ।
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज-सोभा ,
कै उमगे पिय-प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ।
कै करि कर बहु पीयकों टेरेत निज ढिंग सोहई ,
कै पूजनको उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥

(३)

कै पिय-पद-उपमान जानि एहि निज उर धारत ,
कै मुख करि बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत ।
कै ब्रज-तिय-गन-बदन-कमलकी भलकत भाई ,
कै ब्रज हरिपद-परस-हेतु कमला बहु आई ।
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमंडल बगरे फिरत ,
कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ॥

(४)

तिनपै जेहि छिन चंद-जोति राका-निसि आवति ,
जलमें मिलिकै नभ-अवनीलौ तान तनावति ।
होत मुकुरमय सबै तबै उज्ज्वल इक ओभा ,
तन-मन-नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ।
सो को कबि, जो छबि कहि सकै, ता छन जमुना-नीरकी ,
मिलि अवनि और अंबर रहत, छबि इक-सी नभ-तीरकी ॥

(५)

परत चंद्र-प्रतिबिंब कहूँ जल मधि चमकायो ,
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ।
मनु हरि-दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो ,
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायाँ ।
कै रास-रमनमें हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है ,
कै जल उर हरि-मूरति बसत, ता प्रतिबिंब *लखात है ॥

(६)

कबहुँ होत सत चंद, कबहुँ प्रगटत, दुरि भाजत ,
पवन-गवन-बस बिंब-रूप जलमें बहु साजत ।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लोटत डोलै ,
कै तरंगकी डोर हिंडोरन करत कलोलै ।
कै बाल-गुड़ी नभमें उड़ी, सोहत इत-उत धावती ,
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रज-रमनी जल आवती ॥

(७)

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत, मिटि जात, जमुन-जल ,
कै तारागन ठगन लुकत-प्रगटत ससि अविक्ल ।
कै कालिंदी नीर तरंग जिती उपजावत ,
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥

कै बहुत रजत-चकई चलत, कै फुहार-जल उच्छरत ,
कै निसिपति-मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत, कसरत करत ॥

(८)

कूजत कहुँ कलहंस, कहुँ मज्जत पारावत ,
कहुँ कारंडव उड़त, कहुँ जल-कुक्कुट धावत ।
चक्रवाक कहुँ बसत, कहुँ बक ध्यान लगावत ,
सुक-पिक जल कहुँ पियत, कहुँ भ्रमरावलि गावत ।
कहुँ तटपर नाचत मार बहु, रोर बिबिध पच्छी करत ,
जल-पान न्हान करि सुख-भरेतट-सोभा सब जिय धरत ॥

(९)

कहुँ बालुका विमल सकल कोमल बहु छाई ,
उज्जल भलकत रजत-सीढ़ि मनु सरस सुहाई ।
पियके आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाये ,
रतन-रासि करि चूर कूलमें मनु बगराये ।
मनु मुक्त-माँग सोभित भरी स्याम-नीर-चिकुरन परसि,
सतगुरु छायौ कै नीरमें ब्रज-निवास लखि हिय हरसि ॥

श्रीधर पाठक

(१९१६-१९८५)

[श्रीधर पाठक—सारस्वत ब्राह्मण थे । उनका जन्म आगरा जिलेके जौधरी नामक गाँवमें संवत् १९१६ वि० में हुआ । एंट्रेन्सकी परीक्षा पास करने के पीछे उन्होंने सरकारी नौकरी की और उन्नति करते-करते संयुक्त-प्रान्तकी सरकार के दफ्तरके सुपरिण्टेण्डेंट हो गये । फिर पेंशन लेकर प्रयागमें रहने लगे । प्रयागमें उनका पद्मकोट नामक बँगला है, जिसे उन्होंने लताओं एवं वृक्षोंसे सजाकर बहुत रमणीक बना लिया था । वे प्राकृतिक सौन्दर्यके बड़े प्रेमी थे । उनकी कविताओंमें प्रकृति-सौन्दर्यकी अच्छी छटा मिलती है । वे खड़ी-बोलीके प्रारम्भके कवियोंमेंसे थे । उन्होंने ब्रज-भाषा और खड़ी-बोली दोनोंमें कविताकी ; पर उनकी ब्रज-भाषाकी कविताएँ अधिक सरस और मधुर हैं । वे अपनी रचनामें शब्दोंका खूब ध्यान रखते थे । सुघराई उनकी कविताका मुख्य गुण है । वे राष्ट्रीय कवि भी थे, भारत-प्रशंसाकी बहुत-सी कविताएँ उन्होंने लिखीं, जिनका संग्रह भारत-गीतमें है । वे संवत् १९७१ में पंचम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति बनाये गये थे ।

उनकी मुख्य रचनाएँ ये हैं—आत पथिक, ऊजड़ ग्राम, एकांतवासी योगी, काश्मीर-सुषमा, देहरादून, जगत्सचाईसार, मनोविनोद, गोपिका-गीत, भारतगीत आदि । प्रथम तीन पुस्तकें अंग्रेज़ी कवि गोल्डस्मिथके काव्योंका अनुवाद हैं ।]

हिमालय-वर्णन

उत्तर दिसि नगराज अटल छबि-सहित विराजत,
लसत स्वेत सिर मुकुट भलक हिम सोभा भ्राजत ।
बदन देस सविसेस कनक-आभा आभासत,
अधोभागकी म्याम-बरन छबि हृदय हुलासत ॥१॥

सेत-पीत सँग स्याम धार अनुगत सम अन्तर,
सोहत त्रिगुन त्रिदेव त्रिजग प्रतिभास निरन्तर ।
बिलसत सा तिहुँकाल त्रिविध सुठि रंग्य अनूपम
भारतवर्ष-विसाल-भाल-भूषित त्रिपुण्ड्र सम ॥२॥

उज्ज्वल ऊँचे सिखर दूर देसन लौं चमकत,
परत भानु-नव-किरन प्रात, सुबरन सम दमकत ।
लता पुहुप बन-राज सदा ऋतुराज सुहावत,
हरी-भरी, डहडही बृच्छ-माला मन भावत ॥३॥

कोकिल-कीर कदंब-अंब चढ़ि गान सुनावत,
स्यामा चारु सुगीत मधुर-सुर पुनि-पुनि गावत ।
कहुँ हारीत कपोत, कहुँ मैना लखि परियत,
कहुँ-कहुँ खेचर-वर चकोरके दरसन करियत ॥४॥

देवदारकी डार कहुँ लंगूर हिलावत,
कहुँ मरकटको कटक बेगसों तरु-तरु धावत ।
बिकसित नित नव कुसुम तरुन, तरु मुकुलित बौरत,
अलबेले अलिबृन्द कलिन के ढिंग-ढिंग भौरत ॥५॥

भरना जहँ-तहँ भरत, करत कल छर-छर जल रव,
पियत जीव सों अंबु अमृत-उपमा हिम संभव ।
पवन सीत अति सुखद बुभावत बहु बिधि तापा,
बादर दरसत, परसत बरसत आपहि आपा ॥६॥

गंगा गोमुख स्रवत, कहै को, सोभा ताकी ?
बरनै जन्मस्थली वह कि अथवा जमुनाकी ?
सतलज. व्यास, चिनाव प्रभृति पंजाब पंचजल,
सरजू आदि अनेकन नदियनकौ निसरन-थल ॥७॥

पृष्ठभाग रमनीक रुचिर राजत रावन-हृद,
ग्रहन करत निज देह सिंधु अरु ब्रह्मपुत्र नद ।
हरिद्वार. केदार बदरिकाश्रमकी सोभा,
लखि ऐसो को मनुज, जासु मन कबहुँ न लोभा ? ॥८॥

पुनि देखिय कसमीर देस नैपाल तराई,
सिकम और भूटान राज्य आसाम लगाई ।
दक्षिण भुज अफगान-राज-मस्तकसों भेंटत,
बाम बाहुसों बरमाके कच-भार समेटत ॥९॥

ज्यों समर्थ बलवान सुभावहिसों उदार मन,
देत अभय-बरदान मान जुत आश्रित जन-गन ।
आर्यावर्त पुनीत ललकि हिय भरि आलिंगत,
गंगा जमुना अश्रु प्रेम प्रगटत हृदयंगत ॥१०॥

रूरे-रूरे ग्राम अधिक अन्तरसों सोहत,
रूपवती पार्वती सती जुवती मन मोहत ।
अगनित पर्वत-खंड चहुँ दिसि देत दिखाई,
सिर परसत आकास चरन पाताल छुआई ॥११॥

सोहत सुन्दर खेत-पाँति तर ऊपर छाई,
मानहु बिधि पट हरित स्वर्ग-सोपान बिछाई ।
गहरे-गहरे गर्त खड्ड दीर्घ गहराई,
शब्द करत ही घोर प्रतिध्वनि देय सुनाई ॥१२॥

तहाँ निपट निस्संक वन्य-पशु सुखसों बिचरत,
करत केलि कल्लोल, मुदित आनन्दित बिहरत ।
कहुँ ईधन को ढेर सिद्ध-आवास जनावत,
कहुँ समाधि-स्थित जोगीकी गुहा सुहावत ॥१३॥

बिबिध बिलच्छन दृश्य सृष्टि-सुखमा-सुख-मण्डल,
नंदन-बन-अनुरूप भूमि-अभिनय-रंगस्थल ।
प्रकृति-परम-चातुर्य अनूपम-अचरज-आलय,
'श्रीधर' दृग छकि रहत अटल छवि निरखि हिमालय ॥१४॥



अयोध्यासिंह उपाध्याय

(१९२२—वर्त्तमान)

[अयोध्यासिंह उपाध्याय—सनाढ्य ब्राह्मण हैं । इनका जन्म आजमगढ़ जिलेके निजामाबाद गाँवमें सं० १८२२ में हुआ । इन्होंने पहले अध्यापकका काम किया और फिर कानूनगो हो गये । सं० १८८० में इन्होंने सदर कानूनगोके पदसे पेन्शन ले ली और काशीके हिन्दू-विश्वविद्यालयमें अवैतनिक अध्यापक हो गये । ये उदार विचारोंके पुरुष हैं और समाज-सेवाका भाव इनमें खूब भरा है । हिन्दीमें ये कवि-सम्राट् समझे जाते हैं । इन्होंने 'प्रियप्रवास' नामक एक महाकाव्य लिखा है, जो आधुनिक हिन्दीका एक सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है । यह अतुकान्त छन्दों में लिखा गया है । अतुकान्त छन्दोंमें इतनी बड़ी सफल रचना यही हुई । इस काव्यमें यशोदा, गोप-गोपिकाओं और राधाके प्रेमका बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया गया है, साथ ही समाज-सेवाके उच्च आदर्श भी खड़े किये गये हैं । यह संस्कृत-गर्भित खड़ी-बोलीमें लिखा गया है । बोलचालकी भाषामें भी उन्होंने अच्छी कविता की है । इनकी यह एक बड़ी विशेषता है कि ये कठिन-से-कठिन और सरल-से-सरल दोनों प्रकारकी गद्य-पद्य-रचना करनेमें सिद्धहस्त हैं । दिल्लीके चतुर्दश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके ये सभापति बनाये गये थे ।

इनके मुख्य ग्रन्थ ये हैं—

पद्य—(१) प्रियप्रवास (२) चोखे चौपदे (३) चुभते चौपदे
(४) बोलचाल ।

गद्य—(१) ठेठ हिन्दीका ठाठ । (२) अधखिला फूल ।]

१—यशोदा-विलाप

(१)

प्रिय पति, वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है ?
दुख-जलनिधि-डूबीका सहारा कहाँ है ?
लख मुख जिसका मैं आजलौं जी सकी हूँ,
वह हृदय हमारा नैन-तारा कहाँ है ?

(२)

पल-पल जिसके मैं पन्थको देखती थी,
निशि-दिन जिसके ही ध्यानमें थी बिताती,
उरपर जिसके है सोहती मुक्तमाला,
वह नव नलिनी-से नेत्रवाला कहाँ है ?

(३)

मुझ विजित-जराका एक आधार जो है,
वह परम अनूठा रत्न, सर्वस्व मेरा,
धन मुझ निधनीका लोचनोंका उजाला,
सजल जलदकी-सी कान्तिवाला कहाँ है ?

(४)

प्रतिदिन जिसको मैं अंकमें नाथ लेके,
निज सकल कुअंकों की क्रिया कीलती थी,
अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला,
वह किसलयके-से अंगवाला कहाँ है ?

(५)

वर वदन विलोके फुल्ल-अंभोज ऐसा
 करतल-गत होता व्योमका चन्द्रमा था,
 मृदु रव जिसका है रक्त सूखी नसोंका,
 वह मधुमयकारी मानसोंका कहाँ है ?

(६)

स्वकुल जलजका है जो समुत्फुल्लकारी,
 मम परम-निराशा-यामिनीका विनाशी,
 ब्रज-जन विहगोंके वृन्दका मोद-दाता,
 वह दिनकर शोभी राम-भ्राता कहाँ है ?

(७)

मुखपर जिसके है सौम्यता खेलती-सी,
 अनुपम जिसका हूँ शील-सौजन्य पाती,
 पर-दुख लखके है जो समुद्विग्न होता,
 वह सरलपनेका स्वच्छ सोता कहाँ है ?

(८)

सहकर कितने ही कष्ट औ भंकटोंको,
 बहु यजन कराके पूजके निर्जरोको,
 यक सुवन मिला है जो मुझे यत्न द्वारा,
 प्रियतम, वह मेरा कृष्ण प्यारा कहाँ है ?

(९)

मुखरित करता जो सद्मको था शुकों-सा,
 कलरव करता था जो खगों-सा वनोंमें,
 सुध्वनित पिक लौं जो वाटिका था बनाता,
 वह बहु विध कंठों का विधाता कहाँ है ?

(१०)

ग्वग-मृग जिसके थे गानसे मत्त होते,
तरुगण हरियाली भी महादिव्य होती,
पुलकित करती थी जो लता-बेलि-सारी,
उस कल मुरलीका नादकारी कहाँ है ?

(११)

जिस प्रिय बिन सूना ग्राम सारा हुआ है,
सकल सदन में ही छा गई है उदासी ।
जिस बिन ब्रज-भूमें है न होता उजाला,
वह निपट निराली-कांतिवाला कहाँ है ?

(१२)

वन-वन फिरती हैं खिन्न गायें अनेकों,
शुक भर-भर आँखें भौनको देखता है,
सुधि कर जिसकी है सारिका नित्य रोती,
वह निधि-मृदुताका मंजु मोती कहाँ है ?

(१३)

गृह-गृह अकुलाती गोपकी पत्नियाँ हैं,
पथ-पथ फिरते हैं ग्वाल भी उन्मना हो,
जिस कुँवर बिना मैं हो रही हूँ अधीरा,
वह खनि-सुषमा का स्वच्छ हीरा कहाँ है ?

(१४)

प्रिय सुत सँग-भ्राता क्यों नहीं सद्म आया ?
वर-नगर-छटाको देखके क्या लुभाया ?
वह कुटिलजनोंके बीचमें जा पड़ा है !

प्रियतम, उसको या राज्यका भोग भाया ?

(१५)

बहु विभव वहाँका देखके श्याम भूला ?
 वह बिलम गया या वृन्दमें बालकोंके ?
 फँसकर जिसमें, हा ! लाल छूटा न मेरा,
 सुफलक-सुतने क्या जाल कोई बिछाया ?

(१६)

परम शिथिल होके पंककी क्लान्तियोंसे,
 वह ठहर गया है या किसी वाटिकामें ?
 प्रियतम, तुमसे या दूसरोंसे जुदा हो,
 वह भटक रहा है या कहीं मार्ग ही में ?

(१७)

विपुल कलित कुंजें कालिन्दी-कूलवाली,
 अतुलित जिनमें थी प्रीति मेरे प्रियोंकी ।
 पुलकित-चित्तसे वे क्या उन्हींमें गये हैं,
 कतिपय दिवसों की श्रान्ति उन्मोचने को ?

(१८)

विविध सुरभिवाली मंडली बालकोंकी,
 मम युगल-सुतोंके क्या कहीं देख पाई ?
 निज सुहृद-जनोंमें वत्समें, धेनुओंमें,
 बहु बिलम गये वे, या इसीसे न आये ?

(१९)

निकट अति अनूठे नीप फूले-फलेके,
 कल-कल बहती है धार जो भानुजाकी ।
 अति प्रिय सुतको है दृश्य न्यारा वहाँका,
 वह समुद्र उसे ही देखने क्या गया है ?

(२०)

सित सरसिज ऐसे गातके श्याम-भ्राता,
यदु-कुल उपजे हैं, वंशके हैं उजाले ।
यदि वह कुलवालोंकी पड़े प्रीतिमें हैं,
सुत सदन अकेले ही चला क्यों न आया ?

(२१)

प्रियतम, अब मेरा कंठमें प्राण आया,
सच-सच बतला दो प्राण-प्यारा कहाँ है ?
यदि मिल न सकेगा जीवनाधार मेरा,
तब फिर निज पापी प्राण मैं क्यों रखूँगी ?

(२२)

विपुल धन, अनेकों रत्न, हो साथ लाये,
प्रियतम, बतला दो लाल मेरा कहाँ है ?
प्रतिपल उरमें है लालसा वर्द्धमाना,
उस परम निराले लालकं लाभहीकी ।

(२३)

युग-दृग जिसके हैं ज्योति स्वर्गीय पाते,
उर-तिमिर नसाता जो प्रभा-पुंजसे है ।
कल दुति जिसकी है चित्त-उत्ताप खोती,
वह अनुपम हीरा नाथ, मैं चाहती हूँ ।

(२४)

कटि-पट लख पीले रत्न दूँगी लुटा मैं,
तनपर सब नीले रत्नको वार दूँगी ।
पति, यह सब लाये पुत्रको त्याग ऐसे,
मणिगण तज कोई काँच ज्यों सद्म लावे ।

(२५)

परम-सुयशवाले कोशलाधीश ही हैं,
 प्रिय सुत वन जाते ही नहीं जी सके जो ।
 यह हृदय हमारा वज्रसे ही बना है,
 वह नहीं अब भी जो सैकड़ों खंड होता ।

(२६)

निज प्रिय मणिको जो सर्प खोता कभी है,
 सिर पटक धरापै प्राण है त्याग देता ।
 मम सदृश महीमें कौन पापीयसी है,
 हृदय-मणि गँवाके, नाथ, जो जीविता है ?

(२७)

लघुतर सफरी भी भाग्यवाली बड़ी है,
 अलग सलिलसे प्राण जो त्यागती है ।
 अहह ! अवनिमें मैं भाग्यहीना महा हूँ,
 प्रिय सुत बिछुड़े जो आज लौं जी सकी हूँ ।

(२८)

परम पतित मेरे पातकी प्राण ये हैं,
 यदि नहीं अब भी हैं गातको त्याग देते ।
 अहह ! दिन न जाने कौन-सा देखने को,
 दुःखमय तनमें ये निर्ममों से रुके हैं ।

(२९)

विधि-वश इनमें, हा ! शक्ति बाकी नहीं है,
 तन तज सकनेकी क्षीणताधिक्यतासे ।
 वह इस अवनीमें भाग्यवाली बड़ी है,
 अवसरपर सोवे मृत्युके अंकमें जो ।

(३०)

बहु कलप चुकी हूँ, दग्ध भी हो चुकी हूँ,
जगकर कितनी ही रात मैं रो चुकी हूँ ।
अब नहिं उरमें है रक्तका लेश बाकी,
तन, बल, सुख, आशा मैं सभी खो चुकी हूँ ।

(३१)

लख सुखित न होगा, चंद आनन्द कोई,
नहिं अमित उमंगों की कलाएँ कढ़ेंगी ।
यह अवगत होता है सुनी बात द्वारा,
अब वह न सकेगी शांति-पीयूष-धारा ॥

(३२)

प्रिय-बिन अति सूना ग्राम सारा लगेगा,
निशि-दिवस बड़ी ही खिन्नता से कटेंगे ।
समधिक ब्रजमें जो छा गई है उदासी,
अब वह न टलेगी औ सदा ही खिलेगी ॥

(३३)

बहुत सह चुकी हूँ और कैसे सहूँगी ?
पवि-सदृश कलेजा मैं कहाँ पा सकूँगी ?
इस कृशित हमारे गातको, प्राण, त्यागो,
दुख-विवश नहीं तो नित्य रो-रो मरूँगी ॥



२—भेदकी बातें

है उसी एककी भलक सबमें,
हम किसे कान कर गड़ा देखें।
तो गड़ेगा न आँखमें कोई,
हम अगर दीठको गड़ा देखें ॥१॥

एक ही सुर सब सुरोंमें है रमा,
सोचिए, कहिए, कहाँ वह दो रहा।
हर घड़ी, हर अवसरोपर, हर जगह,
हरि-गुनोंका गान ही है हो रहा ॥२॥

पेड़का हर एक पत्ता हर घड़ी,
है नहीं न्यारा हरापन पा रहा।
गुन सको गुन लो, सुनो जो सुन सको,
है किसी गुनवान का गुन गा रहा ॥३॥

हरि-गुनोंको ये सुबह हैं गा रहीं,
सुन हुई वे मस्त कर अठखेलियाँ।
चहचहाती हैं न चिड़ियाँ चावसे,
लहलहाती हैं न उलही बेलियाँ ॥४॥

छा गया हर एक पत्ते पर समा,
पेड़ सबने सिर दिया अपना नवा।
खिल उठे सब फूल चिड़ियाँ गा उठीं,
बह गई कहती हुई हर-हर हवा ॥५॥

है नदी दिन-रात कल-कल बह रही,
बाँध धुन भरने सभी हैं भर रहे,

हर कलेजेमें अजब लहरें उठा
हरि-गुनोंका गान ये हैं कर रहे ॥ ६ ॥

चाहिए था कि गुन-भरेके गुन
भावमें ठीक-ठीक भर जाते ।
पा सके जो न एक गुन भी, तो
क्यों रहे बार-बार गुन गाते ? ॥ ७ ॥

क्या हुआ मुँहसे सदा हरि-हरि कहे,
दूसरोंका दुख न जब हरते रहे ?
जब दयावाले बने न दया दिखा,
तब दयाका गान क्या करते रहे ? ॥ ८ ॥

तह-ब-तह जो कीच है जमती गई
कीचसे कोई उसे कैसे छिले ?
तब भला किस भाँति अंधापन टले
जब किसी अंधेको अंधा ही मिले ? ॥ ९ ॥

भूलसे बचकर भुलावों में फँसी,
काम-धंधा छोड़ सत-धंधी रही ।
सूझ सकता है मगर सूझा नहीं,
बावली दुनिया न कब अधी रही ? ॥ १० ॥

साँस पाते जब बुराईसे नहीं
लाभ क्या तब साँसकी साँसत किये ?
जब दबायेसे नहीं मन ही दबा
नाकको तब हैं दबाते किसलिए ? ॥ ११ ॥

उन लयों लहरों-सुरोंके साथ भर,
रस अछूते प्रेमका जिनसे बहे ।

कंठकी घंटी बजी जिनकी न वे,
कंठमें क्या बाँधते ठाकुर रहे ? ॥१२॥

रंगमें जो प्रेमके डूबे नहीं,
जो न परहितकी तरंगोंमें बहे,
किसलिए हरिनाम तो सह साँसतें
कंठ-भर जलमें खड़े जपते रहे ? ॥१३॥

जान जब तक सका नहीं तब तक
था बना जीव बैल तेलीका ।
जब सका जान तब जगत् सारा
हो गया आँवला हथेलीका ॥१४॥

डूबने हम आप जब दुखमें लगे
सूक्त पाया तब गया क्यों दुख दिया ।
जान गहराई गुनाहोंकी सके
काम जब गहरी निगाहों से लिया ॥१५॥



जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

(१९२३—१९८६)

[जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—अग्रवाल वैश्य थे। उनका जन्म काशीमें सं० १९२३ में हुआ। उनके पिता भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके मित्रोंमेंसे थे। उनकी सत्संगतिसे 'रत्नाकर' की भी काव्यकी ओर रुचि हुई और वे छोटी अवस्थासे ही कविता करने लगे। बी० ए० पास करनेके बाद उन्होंने अवागढ़ और अयोध्या-नरेशके यहाँ नौकरी की और अयोध्याकी महारानीके प्राइवेट सेक्रेटरी भी रहे। वे प्राचीन साहित्य के बड़े भारी ज्ञाता थे। उन्होंने अनेक प्राचीन काव्योंका सम्पादन करके उनको छपवाया और 'बिहारी-सतसई' पर एक उत्कृष्ट टीका लिखी, जिसका नाम 'बिहारी-रत्नाकर' है। अन्तिम समयमें वे सूर-सागर का सम्पादन करनेमें लगे थे। वे व्रजभाषाके सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कवि समझे जाते थे। उनकी कवितामें देव या पद्माकरकी कविताका-सा आनन्द आता है। उसमें प्रकृति-वर्णनकी भी अच्छी बहार रहती है। भाषा चुस्त गठी हुई और जोशीली होती है। सं० १९८८ में वे बीसवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति बनाये गये थे।

उनके मुख्य ग्रन्थ गंगावतरण, हरिश्चन्द्र काव्य, उद्धव-शतक और बिहारी-रत्नाकर हैं।]

गंगावतरण

(१)

महि-वासिनि उर भरति भूरि आनन्द-नद-नारे ।
दुख-दारिद्र्य-द्रुम दरति, बिदारति कलुष करारे ॥
बसुधहि देत सुहाग, माँग मोतिनसों पूरित ।
भरति गोद आमोद, करति मन-मोहनि मूरति ॥

(२)

कर्मज-कृपिपर अति प्रचण्ड पाल-सौ पारति ।
चित्रगुप्तकी लेख-रेख निस्सेष पखारति ॥
चली देवधुनि धाइ धरातल धूम मचावति ।
भूप-भगीरथ-सुभ्र-वेस-जस-रेख खँचावति ॥

(३)

कबहुँ सघन बन पैठि परम स्वच्छन्द कलोलति ।
कहुँ धावति, कहुँ चलत चारु, कहुँ डगमग डोलति ॥
कहुँ दै थपकि थपेड़ पैड़के पेड़ ढहावति ।
कहुँ उत्तुङ्ग तरंग संग तट-बिटप बहावति ॥

(४)

बन-देबिनके वृन्द करत आनन्द बधाए ।
बिबिध-पत्र फल-फूल-मूल-उपहार सजाए ॥
नाग-कन्यका बहु प्रकार उपचार प्रचारै ।
फनि-मनिके करि दीप आरती उमगि उतारै ॥

(५)

दीरघ-दाघ निदाघ माँहि पानीकौ तरसे ।
सीतल धार अपार पाइ बनचर सुख मरसे ॥
अति-अमन्द-आनन्द-मगन मन उमगत डोलत ।
सहज बैर बिसराइ आइ कल कूल कलालत ॥

(६)

कहुँ क्रीड़त करि-निकर तरंगनिमें सुख सरसत ।
मनु कलिंदके सिखर वृन्द सित धन बिच दरसत ॥
कहुँ कपि लटकत नीर अटकित तट-बिलुलित डारनि ।
बालखिल्य मनु लहत सु-तप-संचित-सुख-सारनि ॥

(७)

सुरधुनि-स्वागत-काज साज बनराज सजायौ ।
सहित सहाय-समाज न्यौति ऋतुराज पठायौ ॥
ठाम-ठाम अभिराम सुखद सुखमासौ पागे ।
नन्दन-बन-आनन्द मन्द लागत जिहि आगे ॥

(८)

बर बल्लिनके कुंज-कुंज कुसुमित कहुँ सोहैं ।
गुंजत मत्त-मलिन्द-वृन्द तिनपर मन मोहैं ॥
मनो सुहागिनि सजे अंग बहुरंग दुकूलनि ।
गावति मंगल-माद-भरीं छाजे सिर फूलनि ॥

(९)

कूजत बिबिध बिहंग-संग अति आनन्द-साने ।
मानहु मंगल-पाठ पढ़त द्विजगन उमगाने ॥
कहुँ बिरुदावलि बहत कीर-चारण मनचारी ।
'सावधान' धुनि धुन कहुँ परभृत-प्रतिहारी ॥

(१०)

नाचत मंजुल मोर, भौर साजत सारंगी ।
 करति कोकिला गान, तान तानति बहुरंगी ॥
 स्यामा सीटी देति, चटक चुटकी चटकावत ।
 घूमि भूमि भुकि कल-कपोल तबला गुटकावत ॥

(११)

इमि रौचति रसरंग गंग बन बाहिर आवति ।
 जलद-पटल बिलगाइ जोन्ह मनु छिति छबि छावति ॥
 ऊसरके सर भरति निरस महिं रस सरसावति ।
 आसपासके गाम सुभग सुखधाम बनावति ॥

(१२)

ग्राम-बधूटी जुरति आनि तट गागर लै-लै ।
 गावत परम पुनीत गीत धुनि लावति जै-जै ॥
 कोउ पैठति जल हँसति, घँसति ँँड़ी कोउ तटपर ।
 कोउ मुख पानि पखारि वारि छिरकति निज पटपर ॥

(१३)

कोउ कर जोरि, नवाइ सीस, दृग मूँदि मनावति ।
 पूजा घुघुरी रोट अर्पि कोउ दीप दिखावति ॥
 कोउ गोरुनि जल प्याइ, न्हाइ परखति पनघटपर ।
 कोउ गागरि भरि चलति सीस धरि, कोउ कटि-तटपर ॥

(१४)

कहुँ मग मिलत मसान, मान ताकौ छिति छापित ।
 तहुँ मिलान सुभ सरल स्वर्ग-पथकौ थिर थापित ॥
 हाइ, माँस, तन-सार, छार, जिनके जल परसत ।
 सो सुभ गति अति लहत जाहि जोगी जन तरसत ॥

(५१)

कोउ मगहीसौँ मुरत, कोऊ जमराज सभा-सौँ ।
कोउ नरकनिकौ फारि द्वारि परिपूरि प्रभा-सौँ ॥
चित्रगुप्त चितवत चरित्र यह चित्र भये-से ।
चकित जोहि जमराज काज निज बिसरि गये-से ॥

(१६)

कोउ पापिहि पंचत्व प्राप्त सुनि जम-गन धावत ।
बनि-बनि बावन-बीर बढ़त चौचन्द मचावत ॥
पै ताकी तकि लोथ त्रिपथगा के तट ल्यावत ।
नौ - द्वै ग्यारह होत, तीन - पाँचहि बिसरावत ॥

(१७)

इहि बिधि तरल तरंग गंग महिमा उद्घाटति ।
बसुधा सुधा-निवास करति, बिबुधालय पाटति ॥
ठाम-ठाम बहु धर्मधाम अभिराम बनावति ।
मुक्ति-भुक्तिके अटल सदाव्रत, छेत्र चलावति ॥

(१८)

ब्रह्मावर्त पुनीत पुरी आई उमगाई ।
करि सनमान प्रदान ताहि महिमा अधिकाई ॥
गंग परसतैं पौन-गौन ह्वै सरस सुहावन ।
करत रम्य आराम सरिस चहुँ दिसि उपवन बन ॥

(१९)

मुनिगन मन सुख भरत, हरत आतप तप तापहिं ।
लै-लै तूँबा चलत धाइ सब तजि जग जापहिं ॥
न्हाइ, पाइ जल स्वाद, ब्रह्मचर्चा बिस्तारत ।
नेति-नेति निबटाइ, ठाई इति-इति धुनि धारत ॥

(२०)

चलि बिठौरसों, ठौर-ठौर आनंद उपजावति ।
 दपटि दरेरित दुरति, भपटि दुरभाग भजावति ॥
 पहुँची आनि प्रयाग रम्य दुहुँकूल बनावति ।
 भाऊ भाड़िनि माहिं मुक्त-मुक्ताफल लावति ॥

(२१)

तहँ बिरजा गोलोक-कुंजकी सखी सयानी ।
 है जमुना उमगाइ आइ भेंटी सुख-सानी ॥
 हरि - हर - प्रिया - पुनीत - सुभग - संगम जग-बंदित ।
 निरखि गिराहूँ गुप्त मिलो है द्रवित अनंदित ॥

(२२)

सोभा अकथ अनूप लखत सुर चढ़े बिमाननि ।
 गावत सारद-नारदादि अस्तुति तनि ताननि ॥
 एक पार्श्वसों बढ़ति गंग उत्तुंग तरंगति ।
 इकतैं जमुना आनि मिलति सुख संग उमंगति ॥

(२३)

मनहु सितासित चमर दुरत दुहुँ दिसितैं आवत ।
 तीर्थराज पर हिलत मिलत सुखमा सरसावत ॥
 उभय कछारनि बीच बिसद अचछयबट राजै ।
 मरकत मनिकौ अटल छत्र मानौ छवि छाजै ॥

(२४)

चहुँ दिसि संख - मृदंग - भाँझ - भेरी - धुनि छाई ।
 मनहुँ मंजु राज्याभिषेक की बजति बधाई ॥
 जय-जय हर-हर तुमुल सब्द नभमंडल पूरत ।
 जिहि सुनि दुरित दुरुह दौरि दुरि दूरि बिसूरत ॥

(२५)

दोउ धारा टकराई, उछरि, मुरि, पुनि जुनि धावति ।
सेत-नील घन-पाँति लरति नभमें ज्यों भावति ॥
लहरत लहर दुरंग संग मिल-जुलि मन-भाई ।
तरु-तर ज्यों चलपत्र बीच है परति जुन्हाई ॥

(२६)

सुकृति-वृन्द सानंद जुरत, जोहत संगम बर ।
तिनके पुन्य प्रभाव हँसत जोगी-जंगमतर ॥
कोउ अन्हात गहि तीर, कोऊ मंचनपर चढ़ि-चढ़ि ।
कोउ तरनीतें उतरि, मंझ-धारामें बढ़ि-बढ़ि ॥

(२७)

मृगमद-चंदन बंदनादि कोउ चायनि चरचति ।
दधि-अच्छत-तंबूल-फूल-फल कोउ लें अरचति ॥
चित्रित होति बिचित्र भाँति जल-पाँति सुहाई ।
महि-बेनी पर मनहुँ चारु-चूनर छबि छाई ॥

(२८)

जीवनमुक्त बिरक्त कहूँ बिचरत सुख-साने ।
मुनि-मंडल कहूँ कहत-सुनत इतिहास पुराने ॥
कहुँ द्विज-गन सुर साधि, बाँधि लय, बेद उचारत ।
कहुँ कषिजन स्वच्छन्द छन्द-बन्धकि बिस्तारत ॥

(२९)

इमि सब तीरथमय देवधुनि
धरि प्रयाग गौरव गह्यौ ।
मनु रुचिर-राज-अभिषेक-हित
सब-तीरथ-सुचि जल लह्यौ ॥

रामचन्द्र शुक्ल

(१९४१—१९६७)

[रामचन्द्र शुक्ल—ब्राह्मण थे । उनका जन्म बस्ती जिलेके अगौना नामक गाँवमें सं० १९४१ में हुआ । उन्होंने एफ० ए० तक शिक्षा पाई और पीछे कुछ दिन अध्यापकका काम किया । सं० १९६२ से वे नागरी-प्रचारिणी-सभामें काम करने लगे । नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका का सम्पादन भी उन्होंने ८-९ वर्षों तक किया । बहुत दिनोंसे वे काशीके हिन्दू-विश्व-विद्यालयमें हिन्दी-अध्यापक थे । पुस्तक-पठनका उन्हें बड़ा ध्यसन था । बचपनसे ही प्राकृतिक दृश्यों के प्रति उनका बहुत प्रेम था । उनकी कवितामें प्राकृतिका वर्णन बड़ा मनोहर है ! करुण-रस लिखनेमें वे सिद्धहस्त थे । अधिकतर ब्रजभाषा में लिखते थे ; पर खड़ी बोलीमें भी उन्होंने कई कविताएँ लिखी हैं । उनकी कविताकी भाषा साफ़-सुधरी, सुकोमल और भावानुरूप है । उनका प्रसिद्ध कविता-ग्रन्थ 'बुद्धचरित्र-काव्य' है । कवि होनेके अतिरिक्त वे उच्चकोटिके समालोचक और निबन्ध-लेखक भी थे । तुलसी, सूर और जायसी पर समालोचनाएँ लिखकर उन्होंने समालोचनाक्षेत्रमें युग-परिवर्तन कर दिया । उनके निबन्ध सर्वथा मौलिक विचारोंसे भरे हैं । उनमेंसे अधिकांश श्रद्धा, भक्ति, क्रोध, करुणा आदि मनोविकारोंपर, या कविता क्या है आदि गंभीर विषयोंपर हैं ।

उनकी नीचे लिखी पुस्तकें महत्त्वपूर्ण हैं—१-बुद्धचरित्र (काव्य), २-गोस्वामी तुलसीदास (जीवनी व आलोचना), ३-जायसी-ग्रन्थावली (विस्तृत आलोचना सहित), ४-अमर-गीत-सार (आलोचना-सहित) ५-विश्व-प्रपञ्च (आलोचना-सहित अनुवादित), ६-विचार-बीथी, ७-त्रिवेणी (निबन्ध-संग्रह) ।]

भगवान् बुद्धकी हंस-रक्षा

करत श्रीभगवान् गुरुजनको सदा सम्मान ;
वचन कहत विनीत, यद्यपि परम ज्ञान-निधान ।
राज-तेज लखात मुखपै, तदपि मृदु व्यवहार ;
हृदय परम सुशील कोमल, यदपि शूर अपार ।
कबहुँ जात अहेरको जब सखा लै सँग माँहिं ;
साहसी असवार तिन सम कोउ निकसत नाहिं ।
राज-भवन समीप कबहुँ होइ जौ लगि जाय ;
रथ चलावन माँहि कोऊ तिन्हैं सकत न पाय ॥८॥

करत रहत अहेर, सहसा ठिठकि जात कुमार ;
जान देत कुरंग कों भजि, लगत करन विचार ;
कबहुँ जब घुरदौरमें हय हाँफि छाँड़त साँस,
हार अपनी हेरि वा जब सखा होत उदास ।
लखत कोऊ बात अथवा गुनन मनमें आनि ,
जीति आधी कुँवर बाजी खोय देतो जानि ।
बढ़त ज्यों-ज्यों गयो प्रभुको वयस लहि दिन-राति ,
बढ़त दिन-दिन गई तिनकी दया याही भाँति ।
यथा कोमल पात द्वैतें होत विटप विशाल ,
करत छाया दूर लौं बहु जो गये कछु काल ।

किन्तु जानत नाहिं अबलौं रह्यो राजकुमार ,
क्लेश पीड़ा, शोक काको कहत है संसार ॥२०॥

एक दिवस वसंत-ऋतुमें भई ऐसी बात ,
रहे उपवन बीचसों द्वे हंस उड़िके जात ।
जात उत्तर-ओर निज-निज नीड़ दिशितें धाय ,
शुभ्र हिमगिरि-अंकमें जो लसत ऊपर जाय ।
प्रेम के सुर भरत, बाँवे धवल सुन्दर पाँति ,
उड़े जात बिहंग कलरव करत नाना भाँति ।
देवदत्त कुमार चाप उठाय, शर सन्धानि ,
लक्ष्य अगिले हंसकों करि मारि दीनों तानि ।
जाय बैठ्या पंखमें सां हंसके सुकुमार ।
रह्यो फैल्यो करन हित जो नील नभको पार ॥३०॥ *

गिरयो खग भहराय तनमें बिंध्यो विशिख कराल ;
रक्त-रंजित ह्वै गयो सब श्वेत पंख विशाल ।
देखि यह सिद्धार्थ लीन्हो धाय ताहि उठाय ,
गोदमें लै जाय बैठ्या पद्म-आसन लाय ।
फेर कर लघु जीवको भय दियो सकल छुड़ाय ,
और धरकत हृदय को यों दियो धीर धराय ।
नवल कामल कदलि-दल सम करनसों सहराय ।
प्रेमसों पुचकारि ताकत तासु मुख दुख पाय ॥३८॥

खैचि लीन्हो निठुर शर करि यत्न बारंबार ,
घावपै धरि जड़ी-बूटी कियो बहु उपचार ।
देखिवे हित पीर कैसी होति लागे तीर ;
लियो कुँवर धँसाय सो शर आप खोलि शरीर ।

चौकि सो चट परथो, पीरा परी दाहन जानि ;
छाय नयनन नीर खगपै लग्यो फेरनि पानि ॥४४॥

पास ताके एक सेवक तुरत बोल्यो आय—
अवै मेरे कुँवरने है हंस दियो गिराय ।
गिरया पाटल बीच बिधिकै ठौरपै सो याहि ;
मिलै मोकों, प्रभु, मेरो कुँवर माँगत ताहि ।
बात ताकी सुनत बोल्यो तुरत राजकुमार—
जायकै कहि देहु, देहौ नाहि काहु प्रकार ।
मरत जो खग, अवसि पावत ताहि मारनहार ;
जियत है जब, तासु तापै नाहि कछु अधिकार ।
दियो मेरे बन्धुने बस तासु गतिको मार ।
रही जो इन श्वेत पंखनकी उठावनहारि ॥४५॥

देवदत्त कुमार बोल्यो, जिये वा मरि जाय ,
हात पंछी तासु है जो देत बाहि गिराय ।
नाहि काहूको रह्यो जौ लौं रह्यो नभ माहि ,
गिरि परथो तब भयो मेरो, देत हौ क्यों नाहि ?
लियो तब खग-कंठको प्रभु निज कपोलन लाय ,
पुनि परम गंभीर स्वरसां कह्यो ताहि बुझाय—
उचित है यह नाहि, जो कछु कहत हौ तुम बात ,
गयो है यह बिहग मेरो, नाहि देहौ, तात ! ॥४६॥

जीव बहु अपनाइहौ या भाँति या संसार ,
दया औ प्रेमको निज करि प्रभुत्व प्रसार ।
दया-धर्म सिखाइहौ मैं मनुज-गनकों टेरि ,
मूक खग-पशुके हृदयकी बात कहिहौ हेरि ।

रोकिहों भव-तापकी यह बढ़त धार कराल ,
 परे जामें मनुजतें ले सकल जीव बिहाल ।
 किन्तु चाहै कुँवर तौ चलि विज्ञजनके तीर ,
 कहै अपनी बात, चाहै न्याय धरि जिय धीर ॥७०॥

भयो अन्त विचार नृपके सभामंडप माहिं ,
 कोउ 'ऐसो' कहत, कोऊ कहत 'ऐसो नाहिं' ।
 कह्यो याही बीच उठि अज्ञात पंडित एक—
 प्राण है यदि वस्तु कोऊ, करौ नेक विवेक ;
 जीवपै है जीव-रक्षकको सकल अधिकार ,
 स्वत्व वाको नाहि चाह्यो बधन जो करि वार ,
 बधक नासत औ मिटावत, रखत रच्छनहार ;
 हंस है सिद्धार्थको यह, सोई पावनहार ॥७८॥

लग्यो सारी सभाको यह उचित न्याय विधान ,
 भई मुनिकी खोज पै सो भये अन्तर्धान ।
 व्याल रेंगत लग्यो सब तहँ और काहुहि नाहिं ,
 देवगण या रूप आवत कबहुँ भूतल माहिं ।
 दयाके शुभ कार्यको आरम्भ याहि प्रकार
 कियो श्रीभगवानने लखि दुखी यह संसार ।
 छाँड़ि पीर विहंगकी, उड़ि मिल्यो जो निज गोत ,
 और क्लेश न कुँवर जानत कहाँ कैसे होत ? ॥८६॥

मैथिलीशरण गुप्त

(१९४३- वर्तमान)

[मैथिलीशरण गुप्त—वैश्य हैं । उनका जन्म चिरगाँव (झँसी) सं० १९४३ में हुआ । आधुनिक हिन्दी-कवियोंमें वे सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं । वे पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीके शिष्य एवं अनुयायी हैं और पहले 'सरस्वती'में लिखा करते थे । उनकी 'भारत-भारती' नामक पुस्तक बहुत जनप्रिय हुई । वे इस कालके प्रतिनिधि कवि समझे जाते हैं । उनकी कवितामें देशभक्ति, उच्च आदर्श और पवित्रताके भाव भरे रहते हैं । उन्होंने नवयुवकोंमें राष्ट्रीय भावना और जागृति उत्पन्न की तथा उनमें हिन्दी-कविताके प्रति प्रेम भी उत्पन्न किया । उनकी भाषा शुद्ध खड़ी-बोली होती है । वह व्याकरण-सम्मत होती है और संस्कृतमय होने पर भी कठिन नहीं होने पाती । स्वाभाविक प्रवाह उसमें अच्छा रहता है । खड़ी-बोलीके आरम्भकालीन कवियोंमें वे भी एक हैं । और उस समय लोगोंका जो यह विचार था कि कवियोंके लिए खड़ी-बोली कभी उपयुक्त नहीं हो सकती, उसको उन्होंने निर्मूल सिद्ध कर दिया और खड़ीबोलीमें सफलतापूर्वक कविता करके दिखला दिया । वे अनुवादक भी बहुत अच्छे हैं । उनके मुख्य ग्रन्थ ये हैं:—

मौलिक—भारतभारती, जयद्रथवध, पंचवटी, अनघ, हिन्दू, गुरुकुल, शक्ति, त्रिपथगा, यशोधरा, द्वापर, साकेत-महाकाव्य आदि ।
अनुवादित—मेघनाद-वध, वीरांगना, विरहिणी ब्रजांगना, पलासीका युद्ध, रुबाइयात उमरखय्याम ।]

पञ्चवटीमें लक्ष्मण

[१]

चार चन्द्रकी चंचल किरणें
खेल रही हैं जल-थलमें,
स्वच्छ चाँदनी बिछो हुई है,
अवनि आर अंबर-तलमें ।
पुलक प्रकट करती है धरती,
हरित तृणोंकी नोकोंसे,
मानो झूम रहे हैं तरु भी
मन्द पवनके झोंकोंसे ॥

[२]

पञ्चवटीकी छायामें है,
सुन्दर पर्ण-कुटीर बना,
उसके सम्मुख स्वच्छ शिलापर
धीर, वीर, निर्भीक-मना ।
जाग रहा वह कौन धनुर्धर,
जब कि भुवन-भर सोता है ?
भोगी कुसुमायुध यागी-सा
बना दृष्टि-गत होता है ॥

[३]

किस व्रतमें है व्रती वीर यह
निद्राका यों त्याग किये ?
राज-भोगके योग्य विपिनमें
बैठा आज विराग लिये ?

बना हुआ है प्रहरी जिसका
 उस कुटीरमें क्या धन है,
 जिसकी रक्षामें रत इसका
 तन है, मन है, जीवन है ?

[४]

मर्त्यलोक-मालिन्य मेंटने
 स्वामि-संग जा आई है,
 तीन लोककी लक्ष्मीने यह
 आज कुटी अपनाई है ।
 वीरवंशकी लाज वही है,
 फिर क्यों वीर न हो प्रहरी ?
 विजय देश है, निशा शेष है,
 निशाचरी माया ठहरी !

[५ *]

कोई पास न रहनेपर भी
 जन-मन मौन नहीं रहता,
 आप आपकी सुनता है वह,
 आप आपसे है कहता ।
 बीच-बीचमें इधर-उधर निज
 दृष्टि डालकर मोदमयी
 मन-ही-मन बातें करता है
 वीर धनुर्धर नयी-नयी—

[६]

क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह,
 है क्या ही निस्तब्ध निशा,

है स्वच्छन्द सुमंद गन्धवह,
 निरानन्द है कौन दिशा ?
 बन्द नहीं, अब भी चलते हैं,
 नियति-नटीके कार्य-कलाप
 पर कितने एकान्त भावसे
 कितने शान्त और चुपचाप ।

[७]

है बिखेर देती वसुन्धरा
 मोती सबके सोने पर,
 रवि बटोर लेता है उनको
 सदा सबेरा होने पर,
 और विरामदायिनी अपनी
 संध्याको दे जाता है,
 शून्य श्याम तनु जिससे उसका
 नया रूप भलकाता है ॥

[८]

तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके
 पर है मानो कलकी बात !
 वनको आते देख हमें जब
 आर्त्त-अचेत हुए थे तात ।
 अब वह समय निकट ही है, जब
 अवधि पूर्ण होगी वनकी,
 किन्तु प्राप्ति होगी इस जनको,
 इससे बढ़कर किस धनकी ?

[९]

और आर्यको ? राज्यभार तो
 वे प्रजार्थ ही धारेंगे,

व्यस्त रहेंगे हम सबको भी
 मानो विवश बिसारेंगे ।
 कर विचार लोकोपकारका
 हमें न होगा इससे शोक,
 पर अपना हित आप नहीं क्या
 कर सकता है यह नर-लोक ?

[१०]

मँकली माँने क्या समझा था ?—
 कि मैं राज्यमाता हूँगी;
 निर्वासित कर आर्य रामको
 अपनी जड़े जमा लूँगी ।
 चित्रकूट में किन्तु उसे ही
 देख स्वयं करुणा थकती,
 उसे देखते थे सब, वह थी
 निजको ही न देख सकती ॥

[११]

अहो ! राज-मातृत्व यही था !
 हुए भरत भी सब-त्यागी,
 पर सौ-सौ सम्राटों से भी
 हैं सचमुच वे बड़भागी ।
 एक राज्य का मूढ़ जगतने
 कितना महा-मूल्य रक्खा,
 हमको तो मानो बनमें ही
 है विश्वानुकूल्य रक्खा

[१२]

होता यदि राजत्व-मात्र ही
 लक्ष्य हमारे जीवनका,
 तो क्यों अपने पूर्वज उसको
 छोड़ मार्ग लेते वनका ?
 परिवर्तन ही यदि उन्नति है,
 तो हम बढ़ते जाते हैं,
 किन्तु मुझे तो सीधे सच्चे
 पूर्व भाव ही भाते हैं ॥

[१३]

जो हो, जहाँ आर्य रहते हैं
 वहीं राज्य वे करते हैं,
 उनके शासनमें वनचारी
 सब स्वच्छन्द विहरते हैं ।
 रखते हैं सयन्न हम पुरमें,
 जिन्हें पींजरोमें कर बन्द,
 वे पशु-पक्षी भाभीसे हैं
 हिले-मिले स्वयमपि सानंद ॥

(१४)

करते हैं हम पतित जनोंमें
 बहुधा पशुताका आरोप,
 करता है पशुवर्ग किंतु क्या
 निज निसर्ग-नियमोंका लोप ।
 मैं मनुष्यताको सुरत्वकी
 जननी भी कह सकता हूँ,

किंतु पतितको पशु कहना भी
कभी नहीं सह सकता हूँ ॥

[१५]

आ-आकर विचित्र पशु-पक्षी
यहाँ बिताते दोपहरी,
भाभी भोजन देती उनको.
पञ्चवटी छाया गहरी ।
चारु चपल बालक ज्यों मिलकर
माँको घेर खिभाते हैं,
खेल-खिभाकर भी आर्याको
वे सब यहाँ रिभाते हैं ॥

[१६]

गोदावरी नदीका तट यह
ताल दे रहा है अब भी,
चञ्चल जल-कल-कल कर मानो
तान ले रहा है अब भी,
नाच रहे हैं अब भी पत्ते,
मनसे सुमन महकते हैं,
चंद्र और नक्षत्र ललककर,
लालच-भरे लहकते हैं ॥

[१७]

वैतालिक विहङ्ग भाभीके
संप्रति ध्यानलग्न-से हैं,
नये गानकी रचनामें वे
कवि-कुल-तुल्य मग्न-से हैं ।

बीच-बीचमें नर्त्तक केकी
 मानों यह कह देता है—
 मैं तो प्रस्तुत हूँ, देखें कल
 कौन बढ़ाई लेता है ?

[१८]

आँखोंके आगे हरियाली
 रहती है हर घड़ी यहाँ,
 जहाँ-तहाँ झाड़ीमें फिरती
 है भरनों की झड़ी यहाँ ।
 वनकी एक-एक हिम-कणिका
 जैसी सरस और शुचि है,
 क्या सौ-सौ नागरिक जनोंकी
 वैसी विमल रम्य रुचि है ?

[१९]

मुनियोंका सत्संग यहाँ है,
 जिन्हें हुआ है तत्त्व-ज्ञान;
 सुननेको मिलते हैं उनसे
 नित्य नये अनुपम आख्यान ।
 जितने कष्ट-कंटकोंमें है
 जिनका जीवन-सुमन खिला,
 गौरव-गंध उन्हें उतना ही
 अत्र-तत्र-सर्वत्र मिला ॥

[२०]

शुभ सिद्धान्त-वाक्य पढ़ते हैं
 शुक-सारी भी आश्रमके,

मुनि-कन्याएँ यश गाती हैं
 क्या ही पुण्य-पराक्रमके ।
 अहा ! आर्यके विपिन-राज्यमें
 सुखपूर्वक सब जीते हैं,
 सिंघ और मृग एक घाटपर
 आकर पानी पीते हैं ।

[२१]

गुह-निषाद शबरी तकका मन
 रखते हैं प्रभु काननमें ;
 क्या ही सरल वचन रहते हैं
 इनके भोले आनन में ।
 इन्हें समाज नीच कहता है
 पर हैं ये भी तो प्राणी,
 इनमें भी मन और भाव हैं
 किन्तु नहीं वैसी वाणी ॥

[२२]

कभी विपिनमें हमें व्यजनका
 पड़ता नहीं प्रयोजन है ।
 निर्मल जल, मधु, कंद, मूल, फल—
 आयोजनमय भोजन है ।
 मनःप्रसाद चाहिए केवल,
 क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद ।
 भाभीका आह्लाद अतुल है,
 मँझली माँका विपुल विषाद ॥

[२३]

अपने पौधोंमें जब भाभी
 भर-भर पानी देती हैं,
 खुरपी लेकर आप निराती
 जब वे अपनी खेती हैं,
 पाती हैं तब कितना गौरव
 कितना सुख कितना संतोष !
 स्वावलम्बकी एक भलकपर
 न्यौछावर कुबेरका कोष ॥

[२४]

सांसारिकतामें मिलती है
 यहाँ निराली निःस्पृहता ;
 अत्रि और अनुसूयाकी-सी
 होगी कहाँ पुण्य-गृहता ?
 मानों है यह भुवन भिन्न ही,
 कृत्रिमताका काम नहीं ;
 प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी
 कहीं विकृतिका नाम नहीं ।

[२५]

स्वजनोंकी चिंता है हमको,
 होगा उन्हें हमारा सोच ;
 यही एक इस विपिन-वासमें
 दोनों ओर रहा संकोच ।
 सब सह सकता है, परोक्ष ही
 कभी नहीं सह सकता प्रेम ।
 बस, प्रत्यक्ष भावमें उसका
 रक्षित-सा रहता है क्षेम ॥

[२६]

इच्छा होती है,—स्वजनोंको
 एक बार वन ले आऊँ,
 और यहाँकी अनुपम महिमा
 उन्हें घुमाकर दिखलाऊँ ।
 विस्मित होंगे देख आर्यको
 वे घरकी ही भाँति प्रसन्न,
 मानों वन-विहारमें रत हैं
 वे वैसे ही श्रीसम्पन्न ।

[२७]

यदि बाधाएँ हुई हमें, तो
 उन बाधाओंके ही साथ.
 जिससे बाधा-बोध न हो, वह
 सहनशक्ति भी आई हाथ ।
 जब बाधाएँ न भी रहेंगी
 तब भी शक्ति रहेगी यह ।
 पुरमें जानेपर भी वनकी
 स्मृति-अनुरक्ति रहेगी यह ॥

[२८]

नहीं जानतीं हाय हमारी
 माताएँ आमोद-प्रमोद,
 मिली हमें है कितनी कोमल,
 कितनी बड़ी प्रकृतिकी गोद ।
 इसी खेलको कहते हैं क्या
 विद्वज्जन जीवन-संग्राम ?
 तो इसमें सुनाम कर लेना
 है इतना साधारण काम !

जयशंकर 'प्रसाद'

(१९४६—१९८६)

[जयशंकर 'प्रसाद'—वैश्य जातिके थे । उनका जन्म काशीमें सं० १९४६ में हुआ था । हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और फारसीकी शिक्षा उनको घरपर दी गई थी । पिता एवं बड़े भाईकी मृत्यु हो जानेपर १७ वर्षकी अवस्थामें उन्हें गृहस्थीका भार और सारा कारबार सँभालना पड़ा । बचपनसे ही उनकी कविताके प्रति रुचि थी । उन्होंने हिन्दीमें नवीन-युगका सूत्रपात किया । अतुकांत कविता और रहस्यवाद-सम्बन्धी कविताका उन्होंने आरम्भ किया । उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है । कवि होनेके अतिरिक्त वे उच्चकोटिके नाटककार, गल्पलेखक और उपन्यासकार भी थे । गद्य-काव्य भी उन्होंने लिखा है । भावोंकी मौलिकता एवं भावुकता उनकी रचनाके विशेष गुण हैं । पहले वे ब्रज-भाषामें कविता करते थे ; किन्तु बादमें खड़ीबोलीमें ही लिखने लगे । उनकी भाषा संस्कृतगर्भित और भावके सर्वथा अनुकूल होती है ।

उनके मुख्य-मुख्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं:—

कविता—मन्वंतर, कानन-कुसुम, झरना, चित्राधार, लहर, आँसू,
कामायनी ।

कहानी—प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, छाया ।

उपन्यास—कंकाल, तितली ।

नाटक—राज्यश्री, विशाख, जनमेजयका नागयज्ञ, अज्ञातशत्रु,
चन्द्रगुप्त मौर्य, स्कंदगुप्त, कामना, एक घूँट ।]

१—चित्रकूटमें श्रीराम

(१)

उदित कुमुदिनी-नाथ हुए प्राचीमें ऐसे
सुधा-कलश रत्नाकरसे उठता हो जैसे ।
धीरे-धीरे उठे नई आशा-से मनमें
क्रीड़ा करने लगे स्वच्छ स्वच्छन्द गगनमें ॥

(२)

चित्रकूट भी चित्र-लिखा-सा देख रहा था,
मंदाकिनी-तरंग, उसीसे खेल रहा था,
स्फटिक-शिला-आसीन राम-वैदेही ऐसे
निर्मल जलमें नीलकमल-नलिनी हों जैसे ॥

(३)

निज प्रियतमके संग सुखी थी काननमें भी
प्रेम भरा था वैदेहीके आननमें भी ।
मृग-शावकके साथ मृगी भी देख रही थी,
सरल विलोकन जनकसुतासे सीख रही थी ॥

(४)

निर्वासित थे, राम, राज्य था काननमें भी,
सच ही है श्रीमान् भोगते सुख वनमें भी,
चन्द्रातप था व्योम, तारका रत्न जड़े थे,
स्वच्छ दीप था सोम, प्रजा तरुपुंज खड़े थे ॥

(५)

शांत नदीका स्रोत बिछा था अति सुखकारी,
 कमल-कलीका नृत्य हो रहा था मनहारी ।
 बोल उठा जो हंस देखकर कमल-कलीको,
 तुरत रोकना पड़ा गूँजकर चतुर अलीको ॥

(६)

हिली आमकी डाल, चला ज्यों नवल हिंडोला,
 आह कौन है ? पंचम स्वरसे कोकिल बोला ।
 मलयानिल प्रहरी-सा फिरता था उस वनमें,
 शांति शांत हो बैठी थी कामद काननमें ॥

(७)

राघव बोले देख जानकीके आननको,—
 स्वर्गगाका कमल मिला कैसे काननको ?
 नील मधुपको देख वहीं उस कंज-कलीने
 स्वयं आगमन किया, कहा यह जनकललीने ॥

(८)

बोले राघव,—प्रिये, भयावह-से इस वनमें
 शंका होती नहीं तुम्हारे कोमल मनमें ?
 कहा जानकी ने हँसकर—उसको है क्या डर,
 जिसके पास प्रवीण धनुर्धर ऐसा सहचर ?

(९)

कहा रामने,—अहा, महल मन्दिर मनभावन
 स्मरण न होते, कहा, तुम्हें क्या वे अति पावन ?
 रहते थे भक्तकार-पूर्ण जो तब नूपुरसे,
 सुरभिपूर्ण पुर होता था जिस अंतःपुरसे ॥

(१०)

जनक-सुताने कहा,—नाथ ! यह क्या कहते हैं ?
 नारीके सुख सभी साथ पतिके रहते हैं ।
 कहो उसे, प्रियप्राण, अभाव रहा फिर किसका,
 विभव चरणका रेणु तुम्हारा ही है जिसका ।

२—भारत-गीत

हिमालयके आँगनमें उसे
 प्रथम किरणोंका दे उपहार ।
 उषाने हँस अभिनन्दन किया
 और पहनाया हीरक-हार ॥
 जगे हम लगे जगाने विश्व
 लोकमें फैला फिर आलोक ।
 व्याम तम-पुंज हुआ तब नाश
 अखिल संसृति हो उठी अशोक ॥ ८

विमल वाणीने वाँणा ली
 कमल-क्रीमल करमें सप्रीत ।
 सप्त-स्वर सप्तसिन्धुमें उठे,
 छिड़ा तब मधुर साम-संगीत ॥
 बचाकर बीज रूपसे सृष्टि,
 नावपर भेल प्रलयका शीत,
 अरुणकेतन लेकर निज हाथ,
 वरुण-पथमें हम बड़े अभीत ॥ १६

सुना है दधीचिका वह त्याग—
 हमारी जातीयता-विकास ।
 पुरन्दरने पविसे है लिखा
 अस्थियुगका मेरे इतिहास ॥
 सिन्धु-सा विस्तृत और अथाह
 एक निर्वासितका उत्साह,
 दे रही अभी दिखाई भग्न
 मग्न रत्नाकरकी वह राह ॥ २४

धर्मका ले-लेकर जो नाम
 हुआ करती बलि कर दी बन्द ।
 हमीने दिया शांति-संदेश,
 सुखी होते देकर आनन्द ॥
 विजय केवल लोहेकी नहीं,
 धर्मकी रही धरापर धूम ।
 भिजु होकर रहते सम्राट्,
 दया दिखलाते घर-घर घूम ॥ ३२

यवनको दिया दयाका दान,
 चीनका मिली धर्मकी दृष्टि ।
 मिला था स्वर्णभूमिको रत्न,
 शीलकी सिंहलको भी सृष्टि ॥
 किसीका हमने छीना नहीं
 प्रकृतिका रहा पालना यहीं ।
 हमारी जन्म-भूमि थी यही,
 कहींसे हम आये थे नहीं ॥ ४०

जातियों का उत्थान-पतन,
 आँधियाँ, भङ्गी, प्रचंड समीर,
 खड़े देखा, भेले हँसते,
 प्रलयमें पले हुए हम वीर ॥
 चरित थे पूत, भुजा में शक्ति,
 नम्रता रहा सदा सम्पन्न ।
 हृदयके गौरवमें था गर्व,
 किसीको देख न सके विपन्न ॥

४८

हमारे संचयमें था दान,
 अतिथि थे सदा हमारे देव ।
 वचनमें सत्य, हृदयमें तेज,
 प्रतिज्ञामें रहती थी देव ।
 वही है रक्त, वही है देश,
 वही साहस है वैसा ज्ञान,
 वही है शांति, वही है शक्ति,
 वही हम दिव्य आर्य-संतान ॥
 जियें तो सदा इसीके लिए
 यही अभिमान रहे, यह हर्ष ।
 निछावर हम कर दें सर्वस्व,
 हमारा प्यारा हिन्दुस्तान ॥

६०

रामनरेश त्रिपाठी

(१९४६—वर्त्तमान)

[रामनरेश त्रिपाठी—ब्राह्मण हैं। उनका जन्म जौनपुर जिल्लेके कोइरीपुर नामक ग्राममें सं० १९४६ में हुआ था। इस समय वे प्रयाग-में रहते हैं। उन्होंने भारतवर्षकी दूर-दूर तककी यात्रा की है और अपनी रचनाओंमें सेतुबंध-रामेश्वर, काश्मीर आदि देशोंका प्रकृति-वर्णन किया है। कविता-कौमुदीके दो भागोंमें उन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-कवियोंकी कविताका सपरिचय संग्रह किया है, जो बहुत अच्छा हुआ है। आजकल वे ग्राम-गीतोंका संग्रह करनेमें लगे हैं। उनकी कविता स्वाभाविक, सुबोध एवं जोशीली होती है। उनमें राष्ट्रीय-भाव खूब भरे रहते हैं। प्रकृति-वर्णन भी अच्छा रहता है। संसारसे अलग रहकर केवल आत्म-कल्याण-साधनकी अपेक्षा संसारमें रहकर अपने बन्धुओंका उपकार करनेकी भावना पर वे बहुत जोर देते हैं। वे गद्य भी बहुत अच्छा लिखते हैं। उनकी भाषा संस्कृत-मय; किन्तु परिष्कृत, जोरदार और भावानुकूल होती है।

मिलन, पथिक और स्वप्न नामक तीन काव्य उन्होंने लिखे हैं। उनमें स्वप्न एक उच्छकोटिका काव्य है। कविता-कौमुदी (छः भाग), मानसी (कविता-संग्रह), स्वप्न के चित्र (व्यंग्य कहानियाँ), प्रेमलोक (नाटक), गोस्वामी तुलसीदास आदि उनकी अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।]

स्वदेश-प्रेम

(१)

अतुलनीय जिनके प्रतापका
साक्षी है प्रत्यक्ष दिवाकर,
घूम-घूमकर देख चुका है
जिनकी निर्मल कीर्ति निशाकर,
देख चुके हैं जिनका वैभव
ये नभके अनन्त तारागण,
अगणित बार सुन चुका है नभ
जिनका विजय-घोष रण-गर्जन,

(२)

शोभित है सर्वोच्च मुकुटसे
जिनके दिव्य देशका मस्तक,
गूँज रही हैं सकल दिशाएँ
जिनके जय-गीतों से अब तक,
जिनकी महिमाका है अविरल
साक्षी सत्य-रूप हिम-गिरि-वर,
उतरा करते थे विमान-दल
जिसके विस्तृत वक्षःस्थलतर,

(३)

सागर निज छातीपर जिनके
अगणित अर्णव-पोत उठाकर,
पहुँचाया करता था प्रमुदित
भूमण्डलके सकल तटोंपर,

नदियाँ जिनकी यश-धारा-सी
 बहती हैं अब भी निशि-वासर,
 ढूँढ़ो, उनके चरण-चिह्न भी
 पाओगे तुम इनके तटपर ॥

(४)

विषुवत्-रेखाका वासी, जो
 जीता है नित हाँफ-हाँफकर,
 रखता है अनुराग अलौकिक
 वह भी अपनी मातृ-भूमिपर ।
 ध्रुव-वासी, जो हिममें तममें
 जी लेता है काँप-काँपकर,
 वह भी अपनी मातृ-भूमिपर
 कर देता है प्राण निछावर ॥

(५)

तुम तो, हे प्रिय बन्धु ! स्वर्ग-सी
 सुखद, सकल विभवोंकी आकर
 धरा-शिरोमणि मातृभूमिमें
 धन्य हुए हो जीवन पाकर ।
 तुम जिसका जल-अन्न ग्रहणकर
 बड़े हुए लेकर जिसकी रज,
 तन रहते कैसे तज दोगे
 उसको, हे वीरों के वंशज ?

(६)

जब तक साथ एक भी दम हो,
 हो अवशिष्ट एक भी धड़कन,

रखो आत्म-गौरवसे ऊँची
 पलकें, ऊँचा सिर, ऊँचा मन ।
 एक बूँद भी रक्त शेष हो
 जब तक तनमें हे शत्रुञ्जय,
 दीन-वचन मुख से न उचारो,
 मानो नहीं मृत्युका भी भय ।

(७)

निर्भय स्वागत करो मृत्युका,
 मृत्यु एक है विश्रामस्थल,
 जीव जहाँसे फिर चलता है
 धारण कर नवजीवन-संबल ।
 मृत्यु एक सरिता है, जिसमें
 श्रमसे कातर जीव नहाकर
 फिर नूतन धारण करता है
 काया-रूपी वस्त्र बहाकर ।

(८)

सच्चा प्रेम वही है, जिसकी
 तृप्ति आत्म-बलिपर हो निर्भर ;
 त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है
 करो प्रेमपर प्राण निछावर ;
 देश-प्रेम वह पुण्य-क्षेत्र है
 अमल असीम त्यागसे विलसित,
 आत्माके विकाससे जिसमें
 मनुष्यता होती है विकसित ।

गोपालशरणासिंह

(१९४८—वर्तमान)

[गोपालशरणासिंह—सैंगर क्षत्रिय हैं और रीवा-राज्यके प्रथम श्रेणी के जागीरदार हैं । उनका जन्म सं० १९४८ में हुआ । सं० १९६८ से उन्होंने कविता लिखना आरम्भ किया । वे पहले ब्रजभाषा में लिखते थे ; परन्तु फिर खड़ीबोलीमें लिखने लगे । खड़ीबोलीके कवियोंमें उनका ऊँचा स्थान है । उनकी कविता में भाव प्राचीन कवियों जैसे होते हैं, पर नये साँचेमें ढलनेसे मनोमुग्धकारी बन जाते हैं । उनकी कविता सरल, सुबोध एवं सरस और उनकी भाषा साफ-सुथरी, मधुर और भावोंके उपयुक्त होती है । उसमें ब्रजभाषाका माधुर्य मिलता है । वे खड़ी-बोलीमें भी कवित्त और सवैया छन्दोंको ही काममें लाते हैं और उनमें अच्छा प्रवाह रहता है ।

उनकी कविताओंका एक संग्रह 'माधवी' नामसे प्रकाशित हुआ है ।]

आगमन

लाल, पीले, श्वेत और नीले वस्त्र धारकर
घरसे निकल आये फूल कहाँ जानेको ?
पहने रुचिर परिधान नव-पल्लवोंका
पादप खड़े हैं किसे आदर दिखानेको ?
क्यों है बनी-ठनी लाल-ललित-लताएँ सभी
कोयल है कूक रही किसके रिझानेको ?
कौन आ रहा है, मुझको भी बतलादो जरा,
वायु क्यों लुटाता है सुगंधिके खजाने को ?

स्वागत

नाच रही तरल तरंगें स्वच्छ सागरमें,
बोल रहे विविध विहंग रम्य वनमें ।
छा रही निराली हरियाली मंजु मेदिनीमें
जग रही जगमग ज्योति है गगनमें ॥
लोचन लुभाते हुए लाल वृंत-दोलपर
फूल रहे फूलकर फूल उपवनमें ।
किस अनजाने जग-जीवनके स्वागतको
उड़ रही सरस सुगंधि है पवनमें ?

वह क्षवि

(१)

मंजुल मयंकमें; मयंक-मुखी आननमें,
वैसी निष्कलंक कान्ति देती न दिखाई है ।

दृग भिप जाते, देख पाते हम कैसे उसे,
 ऐसी प्रभा किसने प्रभाकरमें पाई है ॥
 न्यारी तीन लोकसे प्यारी सुखकारी भारी
 सारी मनोहारी छटा उसमें समाई है ।
 जिसको विलोक फीकी शरद-जुन्हाई होती,
 वह मनभाई छवि किसको न भाई है ?

(२)

सुषमा उसीकी अवलोकके सुधाकरमें,
 रूप-सुधा पीकर चकोर न अघाते हैं ।
 घनकी घटामें नव निरख उसीकी छटा
 मंजुल मयूर होते मोद-मदमाते हैं ॥
 फूलोंमें उसीकी शोभा देखके मिलिंद-वृन्द
 फूले न समाते, गुन-गुन गुण गाते हैं ।
 दीप्यमान दीपकमें देख वही छवि बाँकी
 प्रेमसे प्रफुल्लित पतंग जल जाते हैं ॥

(३)

कंज-कलिकामें नहीं सुषमा मयंककी है,
 कोमलता कंजकी मयंकने न पाई है ।
 चंपक-कलीमें न सुवर्णकी सुवर्णता है,
 चंपककी चारुता सुवर्णमें न आई है ॥
 रत्नकी रुचिरतामें मणिकी मनोज्ञतामें
 एक दूसरेकी प्रभा देती न दिखाई है ।
 सबकी निकाई सुघराई मोददायी महा
 ललित लुनाई उस छविमें समाई है ॥

(४)

वन-उपवनमें, सरोजमें, सरोवरमें,
 सुमन-सुमनमें उसीकी सुघराई है ।
 चंपक चमेलियोंमें, नवल नवेलियोंमें,
 ललित लताओंमें भी उसकी लुनाई है ॥
 देख पड़ती है रंग-रंगके विहंगमोंमें,
 सुषमा उसीकी कुंज-कुंजमें समाई है ।
 सब ठौर देखो, वह छबि दिखलाई देती,
 उरमें समाई तथा लोचनोंमें छाई है ॥

अचरज

मैंने कभी सोचा वह मंजुल मयंकमें है,
 देखता इसीसे उसे चावसे चकोर है ।
 कभी यह ज्ञात हुआ, वह जलधरमें है,
 नाचता निहारके उसीको मंजु-मोर है ॥
 कभी यह हुआ अनुमान, वह फूलमें है,
 दौड़कर जाता भृङ्ग-वृन्द उस ओर है ।
 कैसा अचरज है, न जान पाया मैंने कभी,
 मेरे चित्तमें ही छिपा मेरा चितचोर है ॥

सियारामशरण गुप्त

(१९५२—वर्तमान)

[सियारामशरण गुप्तका जन्म सं० १९५२ में हुआ । वे मैथिली-शरण गुप्तके छोटे भाई हैं । उनकी कवितामें करुण-रसकी प्रधानता रहती है । समाज की अनेक कुरीतियोंपर उन्होंने बड़ी तेज़ चुटकियाँ ली हैं, जो हृदयमें जाकर चुभ जाती हैं । उनकी भाषा खड़ीबोली है, जो संस्कृत-मय ; किन्तु सुबोध होती है ।

उनकी अनाथ, मौर्यविजय, विषाद, आर्द्रा, दूर्वादल, पाथेय नामक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं । मौर्यविजय, मौर्यकालका एक वीररस-पूर्ण छोटा-सा काव्य है । आर्द्रा और दूर्वादल कविताओं के संग्रह हैं । उन्होंने उपन्यास, कहानियाँ और नाटक भी लिखे हैं ।]

एक फूल की चाह

(१)

उद्वेलित कर अश्रु-राशियाँ
हृदय-चिताएँ धधकाकर,
महा महामारी प्रचंड हो
फैल रही थी इधर-उधर ।
क्षीणकंठ मृतवत्साओंका
करुण-रुदन दुर्दान्त नितांत,
भरे हुए था निज कृश-रवमें
हाहाकार अपार अशांत ।
बहुत रोकता था सुखिया को,—
न जा खेलनेको बाहर,
नहीं खेलना रुकता उसका,
नहीं ठहरती वह पल भर ।
मेरा हृदय काँप उठता था
बाहर गई निहार उसे,
यही मनाता था कि बचा लूँ
किसी भाँति इस बार उसे ।
भीतर जो डर रहा छिपाये,
हाय ! वही बाहर आया,
एक दिवस सुखियाके तनको
ताप-तप्त मैंने पाया ।
ज्वरमें विह्वल हो बोली वह
क्या जानूँ किस डरसे डर,

मुझको देवीके प्रसादका
एक फूल ही दो लाकर !

(२)

बेटी, बतला तो तू मुझको,
किसने तुझे बताया यह ?
किसके द्वारा, कैसे, तूने
भाव अचानक पाया यह ?
मैं अछूत हूँ, मुझे कौन हा !
मंदिरमें जाने देगा ?
देवीका प्रसाद ही मुझको
कौन यहाँ लाने देगा ?
बार-बार फिर-फिर तेरा हठ,
पूरा इसे करूँ कैसे ?
किससे कहूँ, कौन बतलावे,
धीरज हाय ! धरूँ कैसे ?
कोमल कुसुम-समान देह हा !
हुई तप्त अंगारमयी,
प्रतिपल बढ़ती ही जाती है
विपुल वेदना, व्यथा नयी ।
मैंने कई फूल ला-लाकर
रक्खे, उसकी खटिया पर ।
सोचा,—शांत करूँ मैं उसको
किसी तरह तो बहलाकर ।
तोड़-मोड़ वे फूल फेंक सब
बोल उठी वह चिल्लाकर,—

मुझको देवीके प्रसादका
एक फूल ही दो लाकर ।

(३)

क्रमशः कंठ क्षीण हो आया
शिथिल हुए अवयव सारे,
बैठा था नव-नव उपायकी
चिन्तामें मैं मन मारे ।
जान सका न, प्रभात सजग से
हुई अलस कब दोपहरी,
स्वर्णघनों में कब रवि डूबा,
कब आई संध्या गहरी ।
सभी ओर दिखलाई दी बस
अन्धकार की ही छाया,
छोटी-सी बच्चीका प्रसने
कितना बड़ा तिमिर आया !
ऊपर विस्तृत महाकाशमें
जलते-से अंगारोंसे,
भुलसी-सी जाती थीं आँखें
जगमग जगते तारोंसे ।
देख रहा था,—जो सुस्थिर हो
नहीं बैठती थी क्षण भर,
हाय ! वही चुपचाप पड़ी थी
अटल शांति-सी धारण कर ।
सुनना वही चाहता था मैं
उसे स्वयं ही उकसाकर,—

मुझको देवीके प्रसादका
एक फूल ही दो लाकर।

(४)

हे मातः, हे शिवे, अंबिके,
तम ताप यह शान्त करो,
निरपराध छोटी बच्ची यह,
हाय ! न मुझसे इसे हरो !
काली कान्ति पड़ गई इसकी,
हँसी न जाने गई कहाँ,
अटक रहे हैं प्राण क्षोण्णतर
सौंसोंमें ही हाय ! यहाँ ;
अरी निष्ठुरे, बढ़ी हुई ही
हे यदि तेरी तृषा नितांत,
तो कर ले तू उसे इसी क्षण
मेरे इस जीवन से शांत !
मैं अछूत हूँ तो क्या मेरी
विनती भी है, हाय ! अपूत ?
उससे भी क्या लग जावेगी
तेरे श्रीमंदिर को छूत ?
कैसे ज्ञात मेरी विनती वह
पहुँची अथवा नहीं वहाँ ?
उस अपार सागरका दीखा
पार न मुझको कहीं वहाँ ।
अरी रात, क्या अक्षयता का
पट्टा लेकर आई तू ?

आकर अखिल विश्वके ऊपर
 प्रलय घटा-सी छाई तू ।
 पग भर भी न बढ़ी तू आगे,
 डटकर बैठ गई ऐसी,
 क्या न अरुण-आभा जागेगी ?
 सहसा आज विकृति कैसी !
 युग-के-युग-से बीत गये हैं,
 तू ज्यों-की-त्यों है लेटी,
 पड़ी एक करवट कबसे तू,
 बोल, बोल, कुछ तो बेटी !
 वह चुप थी पर गूँज रही थी
 उसकी गिरा गगन भर कर,—
 मुझको देवीके प्रसादका
 एक फूल ही दो लाकर !

(५)

कुछ हो, देवीके प्रसादका
 एक फूल तो लाऊँगा,
 हो तो प्रातःकाल शीघ्र ही
 मन्दिरको मैं जाऊँगा,
 मुझपर देवीकी छाया है
 और इष्ट है यही तुम्हे
 देखूँ, देवीके मन्दिरमें
 रोक सकेगा कौन मुझे ?
 मेरे इस निश्चल निश्चयने
 भटसे हृदय किया हलका,

ऊपर देखा,—अरुण रागसे
 रंजित भाल नभस्तलका !
 झड़-सी गई तारकावलि थी
 म्लान और निष्प्रभ होकर,
 निकल पड़े थे खग नीड़ोंसे
 मानो सुधबुध-स्त्री खोकर ।
 रस्सी-डोल हाथमें लेकर,
 निकट कुँ पर जा, जल खींच ।
 मैंने स्नान किया शीतल हो,
 सलिल सुधासे तनुको सींच ।
 उज्ज्वल वस्त्र पहन घर आकर
 अशुचि ग्लानि सब धो डाली,
 चन्दन पुष्प कपूर धूपसे
 सज ली पूजाकी थाली ।
 सुखियाके सिरहाने जाकर
 मैं धीरेसे खड़ा हुआ,
 आँखें झँपी हुई थीं, मुख भी
 मुरझा-सा था पड़ा हुआ ।
 मैंने चाहा,—उसे चूम लूँ,
 किन्तु अशुचितासे डरकर,
 अपने वस्त्र सँभाल, सिकुड़कर,
 खड़ा रहा कुछ दूरीपर ।
 वह कुछ-कुछ मुसकाई सहसा,
 जाने किन स्वप्नोंमें लभ,
 उसकी वह मुसकाहट भी हा !
 कर न सकी मुझको मुद-मम ।

अक्षम मुझे समझकर क्या तू
 हँसी कर रही है मेरी ?
 बेटी, जाता हूँ मन्दिरमें
 आज्ञा यही समझ तेरी ।
 उसने नहीं कहा कुछ, मैं ही
 बोले उठा तब धीरज धर,—
 तुझको देवीके प्रसादका
 एक फूल तो दूँ लाकर ।

(६)

ऊँचे शैल-शिखरके ऊपर
 मन्दिर था विस्तीर्ण विशाल,
 स्वर्ण-कलश सरसिज विकसित थे
 पाकर समुदित रवि-कर-जाल ।
 परिक्रमा-सी कर मन्दिरकी
 ऊपरसे आकर भर-भर,
 वहाँ एक भरना भरता था
 कल-कल मधुर गान कर-कर ।
 पुष्पहार-सा जँचता था वह
 मन्दिरके श्रीचरणोंमें,
 त्रुटि न दीखती थी भीतर भी,
 पूजाके उपकरणोंमें,
 दीप-धूपसे आमोदित था
 मन्दिरका आँगन सारा ।
 गूँज रही थी भीतर-बाहर
 मुखरित उत्सवकी धारा ।

भक्त-वृन्द मृदु मधुर कंठसे
गाते थे सभक्ति मुदमय,—
पतित-तारिणी पाप-हारिणी
माता, तेरी जय-जय-जय !

पतित-तारिणी तेरी जय-जय,—
मेरे मुखसे भी निकला,
बिना बड़े ही मैं आगेको
जाने किस बलसे ठिकला ?

माता, तू इतनी सुन्दर है,
नहीं जानता था मैं यह,
माँके पास रोक बच्चों की,
कैसी बिधि यह तू ही कह ?

आज स्वयं अपने निदेशसे
तूने मुझे बुलाया है,
तभी आज पापी अछूत यह
श्रीचरणों तक आया है ।

मेरे दीप-फूल लेकर वे
अम्बाको अर्पित करके,
दिया पुजारीने प्रसाद जब
आगेको अंजलि भरके ।

भूल गया उसका लेना भट
परम लाभ-सा पाकर मैं,
सोचा,—बेटीको माँके ये
पुण्य पुण्य दूँ जाकर मैं !

(७)

सिंह-पौर तक भी आँगनसे
 नहीं पहुँचने मैं पाया,
 सहसा यह सुन पड़ा कि—कैसे
 यह अछूत भीतर आया ?
 पकड़ो, देखो, भाग न जावे,
 बना धूर्त यह है कैसा ?
 साफ-स्वच्छ परिधान किये है
 भले-मानुसोंके जैसा ।
 पापी ने मन्दिर में घुमकर
 किया अनर्थ बड़ा भारी,
 कलुषित कर दी है मंदिरकी
 चिर-कालिक शुचिता सारी ।
 ऐं, क्या मेरा कलुष बड़ा है
 देवी की गरिमा से भी ?
 किसी बातमें हूँ मैं आगे
 माता की माँहमाके भी ?
 माँके भक्त हुए तुम कैसे
 करके यह विचार खोटा ?
 माँके सम्मुख ही माँका तुम
 गौरव करते हो छोटा !
 कुछ न सुना भक्तोंने, भट से
 मुझे घेरकर पकड़ लिया,
 मार-मारकर मुझे-धूँसे
 धमसे नोचे गिरा दिया ।

मेरे हाथोंसे प्रसाद भी
 बिखर गया, हा ! सब-का-सब,
 हाय ! अभागी बेटी, तुझ तक
 कैसे पहुँच सके यह अब ?
 मैंने उनसे कहा,—दंड दो
 मुझे मारकर, ठुकराकर,
 बस यह एक फूल कोई भी
 दो बच्ची को ले जाकर ?

(८)

न्यायालय ले गये मुझे वे
 सात दिवस का दंड-विधान
 मुझको हुआ; हुआ था मुझसे
 देवी का महान् अपमान !
 मैंने स्वीकृत किया दंड वह
 शीश झुकाकर चुप ही रह,
 उस असीम अभियोग दोष का
 क्या उत्तर देता क्या कह ?
 सात रोज ही रहा जेल में
 या कि वहाँ सदियाँ बीतीं !
 अविश्रांत वर्षा करके भी
 आँखें तनिक नहीं रीतीं ।
 कैदी कहते,—अरे मूर्ख, क्यों
 ममता थी मंदिरपर ही ?
 पास वहीं मसजिद भी तो थी,
 दूर न था गिरजाघर भी ।

कैसे उनको समझाता मैं,
 वहाँ गया था क्या सुखसे ?—
 देवीका प्रसाद चाहा था
 बेटीने अपने मुखसे ।

(६)

दंड भोगकर जब मैं छूटा,
 पैर न उठते थे घरको ।
 पीछे ठेल रहा था कोई
 भय-जर्जर तनु-पंजरको,
 पहलेकी-सी लेने मुझको
 नहीं दौड़कर आई वह ।
 उलझी हुई खेलमें ही, हा !
 अबकी दी न दिखाई वह ।
 उसे देखने मरघटको ही
 गया दौड़ता हुआ वहाँ,—
 मेरे परिचित बंधु प्रथम ही
 फूँक चुके थे उसे जहाँ ।
 बुझी पड़ी थी चिता वहाँ पर
 छाती धधक उठी मेरी ।
 हाय ! फूल-सी कोमल बच्ची
 हुई राखकी थी ढेरी !
 अंतिम बार गोदमें बेटी,
 तुझको ले न सका मैं, हा !
 एक फूल माका प्रसाद भी
 तुझको दे न सका मैं, हा !

बह प्रसाद देकर ही तुम्हको
 जेल न जा सकता था क्या ?
 तनिक ठहर ही सब जन्मोंके
 दंड न पा सकता था क्या ?
 बेटी की छोटी इच्छा वह
 कहीं पूर्ण मैं कर देता.
 तो क्या, अरे दैव, त्रिभुवन का
 सभी विभव मैं हर लेता ?
 यहीं चिता पर धर दूँगा मैं,
 कोई, अरे ! सुनो, वर दो,—
 मुम्हको देवी के प्रसादका
 एक फूल ही लाकर दो !

सुमित्रानन्दन पन्त

(१९५८—वर्त्तमान)

[सुमित्रानन्दन पन्त—पहाड़ी ब्राह्मण हैं । उनका जन्म अलमोड़ा जिलाके कासनी गाँवमें संवत् १९५८ में हुआ । उन्होंने इण्टरमीजियट तक पढ़कर कॉलेज छोड़ दिया और प्रकृति-देवीकी स्वाधीनता-मय गोदको अपना शिचालय बनाया । वे अविवाहित हैं, कविता करते हैं और आनन्दसे विचरण करते हैं । कविताके प्रति उनको स्वाभाविक रुचि है । उनकी कविताएँ हिंदीमें बिलकुल नये ढंगकी हैं । वे हिंदी-साहित्यके नवीन-युग-प्रवर्त्तकोंमें गिने जाते हैं । उनकी शैली अपनी अलग ही है ।

उनकी भाषा खड़ी बोली है, जो संस्कृत-मय और बड़ी मधुर होती है । खड़ी बोलीकी कर्कशता उसमें नहीं पाई जाती ।

उनकी उच्छ्वास, वीणा, पल्लव, ग्रन्थि, गुञ्जन, ज्योत्स्ना (नाटक), युगवाणी, ग्राम्या आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं ।]

बादल

सुरपतिके हम ही हैं अनुचर,
जगत्प्राणके भी सहचर ;
मुग्ध-शिखीके नृत्य मनोहर
कृपक-बालिकाके जलधर,

जलाशयोंमें कमलदलों-सा
हमें खिलाता नित दिनकर,
पर बालक-सा वायु सकल-दल
बिखरा देता, चुन सत्वर ।

८

लघु-लहरोंके चल-पलनोंमें
हमे झुलाता जब सागर,
वही चील-सा झपट, बाँह गह,
हमको ले जाता ऊपर ।

विपुल कल्पना-से त्रिभुवनकी
विविध रूप धर, भर नभ-अंक,
हम फिर क्रीड़ा-कौतुक करते
छा अनन्त उरमें निशंक ।

१६

कभी चौकड़ी भरते मृग-से
भूपर चरण नहीं धरते,
मत्त-मतंगज कभी भूमते,
सज्जग-शशक नभको चरते,

कभी अचानक भूतोंका-सा
प्रकटा विकट महा आकार
कड़क-कड़क जब हँसते हम सब
थर्रा उठता है संसार । २४

फिर परियोंके बच्चोंसे हम
सुभग सीपके पंख पसार
समुद्र पैरते शुचि-ज्योत्स्नामें
पकड़ इन्दुके कर सुकुमार ।

अनिल विलोडित गगन-सिंधुमें
प्रलय बाढ़-से चारों ओर
उमड़-उमड़ हम लहराते हैं
बरसा उपल, तिमिर घनघोर । ३२

दमयन्ती-सी कुमुद-कलाके
रजत करोंमें फिर अभिराम
स्वर्णहंस-से हम मृदु-ध्वनि कर
कहते प्रिय-संदेश ललाम

व्योम-विपिनमें जब वसंत-सा
खिलता नव पल्लवित प्रभात,
बहते हम तब अनिल स्रोतमें
गिर तमाल-तमके-से पात ; ४०

उदयाचलसे बालहंस फिर
उड़ता अंबरमें अवदात,
फैल स्वर्ण पंखोंसे हम भी
करते द्रुत मारुतसे बात ।

धीरे-धीरे संशय-से उठ,
 बढ़ अपयश-से शीघ्र अछोर,
 नभके उरमें उमड़ मोह-से
 फैल लालसा-से निशिभोर ; ४८

इन्द्रचाप-सी व्योम-भृकुटिपर
 लटक मौन-चिंता-से घोर
 घोष-भरे विप्लव-भय-से हम
 छा जाते द्रुत चारों ओर

पर्वतसे लघु धूलि, धूलिसे
 पर्वत बन, पलमें, साकार—
 कालचक्र से चढ़ते, गिरते,
 पलमें जलधर, फिर जल-धार ;

कभी हवामें महल बनाकर,
 सेतु बाँधकर कभी अपार,
 हम विलीन हो जाते सहसा
 विभव-भूति ही से निस्सार । ६०

सुभद्राकुमारी चौहान

(१९६१—वर्तमान)

[सुभद्राकुमारी चौहान—कविय हैं । उनका जन्म प्रयागमें सं० १९६१ में हुआ । सं० १९७६ में खण्डवा (मध्यप्रदेश) के ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहानसे उनका विवाह हुआ । उन्होंने क्रास्थवेट-गर्ल्स-स्कूलमें शिक्षा पाई ; परन्तु अहसयोगकी लहरमें पढ़ना छोड़ दिया और राष्ट्रीय काम करने लगीं । कविताकी धुन उनको बचपनसे ही थी । आधुनिक हिन्दीकी स्त्री-कवियोंमें उनका स्थान सबसे ऊँचा है । उनकी कविता स्वाभाविक, सुबोध एवं भावमय होती है । देशप्रेम और बाल्य-जीवन उनकी कविताके मुख्य विषय हैं । उनकी वर्णनशैली सजीव होती है, जो सामने चित्र-सा खड़ा कर देती है । 'भाँसीकी रानी' नामक कविताके प्रत्येक शब्दमें वीर-रस भरा हुआ है और उसको पढ़ते समय हृदय उछलने लगता है । उनकी भाषा खड़ीबोली है, जो बहुत सरल होती है । उसमें प्रचलित उर्दू शब्दोंका भी प्रयोग हुआ है । सं० १९८८ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके भाँसीके अधिवेशनमें वे सेकसरिया महिला-पुरस्कार-द्वारा (जो सर्वश्रेष्ठ महिला-लेखिकाको दिया जाता है) सम्मानित की गईं । संवत् १९८६ का सेकसरिया-पुरस्कार भी उन्हींको मिला । इस समय आप मध्यप्रान्तकी लेजिस्लेटिव असेम्बलीकी मेम्बर भी हैं ।

उनकी कविताओंका संग्रह 'मुकुल' नाम से प्रकाशित हुआ है । वे कहानियाँ भी लिखने लगी हैं, जिनका एक संग्रह 'बिलरे मोती' नामसे छपा है ।]

१—मेरा नया बचपन

बार-बार आती है मुझको मधुर याद, बचपन, तेरी ।
 गया, ले गया तू जीवनकी सबसे मस्त खुशी मेरी ॥
 चिन्ता-रहित खेलना-खाना वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द ।
 कैसे भूला जा सकता है बचपनका अतुलित आनंद ?
 ऊँच-नीचका ज्ञान नहीं था, छुआछूत किसने जानी ?
 बनी हुई थी, अहा ! भोंपड़ी और चीथड़ों में रानी ॥
 रोना और मचल जाना भी क्या आनंद दिखाते थे ?
 बड़े-बड़े मोती-से आँसू जयमाला पहिनाते थे ॥
 दादाने चंदा दिखलाया नेत्र-नीर द्रुत दमक उठे ।
 धुली हुई मुस्कान देखकर सबके चेहरे दमक उठे ॥
 आज बचपन, एक बार फिर दे-दे अपनी निर्मल शांति ।
 व्याकुल व्यथा मिटानेवाली, वह अपनी प्राकृत विश्रान्ति ॥
 वह भोली-सी मधुर सरलता, वह प्यारा जीवन निष्पाप ।
 क्या फिर आकर मिटा सकेगा, तू मेरे मन का संताप ?
 मैं बचपनको बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी ।
 नंदन-वन-सी फूल उठी वह छोटी-सी कुटिया मेरी ॥
 'माँ-आ' कहकर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी ।
 कुछ मुँहमें कुछ लिये हाथमें मुझे खिलाने आई थी ।
 पुलक रहे थे अँग, दृगोंमें कौतूहल था छलक रहा ।
 मुँह पर थी आह्लाद-लालिमा, विजय-गर्वथा झलक रहा ॥
 मैंने पूछा, यह क्या लाई ? बोल उठी वह माँ, काओ ।
 हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशीसे, मैंने कहा तुम्हीं खाओ ॥

पाया बचपन मैंने फिरसे, बचपन बेटी बन आया ।
 उसकी मंजुल मूर्ति देखकर मुझमें नवजीवन आया ॥
 मैं भी उसके साथ खेलती, खाती हूँ, तुतलाती हूँ ।
 मिलकर उसके साथ स्वयं मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ॥

२—बालिका का परिचय

यह मेरी गोदी की शोभा, सुख-सुहागकी है लाली ।
 शार्ही शान भिखारिनकी है, मनोकामना मतवाली ॥१॥
 दीपशिखा है अंधकारकी, घनी घटाकी उजियाली ।
 ऊषा है यह कमल-भृङ्गकी, है पतझड़ की हरियाली ॥२॥
 सुधा-धार यह नीरस दिलकी, मस्ती मगन तपस्वीकी ।
 जीवित-ज्योति नष्ट नयनोंकी, सच्ची लगन मनस्वीकी ॥३॥
 बीते हुए बालपनकी यह, क्रीड़ा-पूर्ण वाटिका है ।
 वहीं मचलना, वहीं किलकना, हँसती हुई नाटिका है ॥४॥
 मेरा मंदिर, मेरी मसजिद, काबा काशी यह मेरी ।
 पूजा-पाठ-ध्यान, जप-तप हैं, घट-घट-वासी यह मेरी ॥५॥
 कृष्णचन्द्रकी क्रीड़ाओंको, अपने आँगनमें देखो ।
 कौशिल्याके मातृ-मोदको, अपने ही मन में लेखो ॥६॥
 प्रभु ईसाकी क्षमाशीलता, नबी मुहम्मदका विश्वास ।
 जीवदया जिनवर गौतम की, आओ देखो इसके पास ॥७॥
 परिचय पूछ रहे हो मुझसे, कैसे परिचय दूँ इसका ।
 वही जान सकता है इसको, माता का दिल है जिसका ॥८॥

परिशिष्ट १

रस-निरूपण

काव्यके पठन, श्रवण अथवा अभिनय-दर्शनसे जो अलौकिक आनन्द उत्पन्न होता है, उसे रस कहते हैं। रसकी उत्पत्ति काव्यमें वर्णित मनो-विकार या भावसे होती है, जिसका अनुभव पाठक या श्रोता या दर्शकके हृदयमें होता है। इस प्रकार रसके आधार भाव हैं। भाव दो प्रकारके होते हैं—(१)स्थायीभाव और (२) सञ्चारीभाव। जो भाव मनमें बहुत देर तक रहकर उसे तन्मयकर देते हैं, और जो इस प्रकार रस बन जाते हैं, वे स्थायीभाव कहलाते हैं। जो भाव मनमें थोड़े समय तक उत्पन्न होकर चले जाते हैं, वे सञ्चारीभाव कहलाते हैं। ये स्थायीभावकी अनुभूतिमें सहायक होते हैं।

इन दो प्रकारके भावोंके अतिरिक्त रसकी उत्पत्ति के लिए विभाव और अनुभावकी आवश्यकता होती है। रसकी उत्पत्ति और उद्दीपनके कारणोंको विभाव कहते हैं। इनके दो भेद होते हैं:—

(१) आलम्बन—जिसके कारण स्थायीभावकी उत्पत्ति होती है ; जैसे—

शृङ्गारमें प्रेमपात्र, करुणमें मृत व्यक्ति, रौद्रमें शत्रु, इत्यादि।
(२) उद्दीपन—ऐसी परिस्थिति जो उत्पन्न हुए स्थायीभावको उद्दीप्त या तीव्र करे ; जैसे—शृङ्गारमें सुन्दर प्राकृतिक दृश्य, वसन्त और सङ्गीत ; हास्यमें हास्योत्पादक व्यक्तिकी चेष्टाएँ ; वीरमें मारु बाजा, चारणोंका बढ़ावा इत्यादि।

आन्तरिक मनोभावको बाहर प्रकट करनेवाली शारीरिक चेष्टाओंको अनुभाव कहते हैं ; जैसे—मुख खिलना, भुजा फड़कना, काँपना, रुदन, आँखें लाल होना इत्यादि ।

प्रत्येक रसका एक स्थायीभाव होता है । रस और उनके स्थायी भाव नीचे लिखे जाते हैं:—

१	शृङ्गार	प्रेम (या रति)
२	हास्य	हास (हँसी)
३	करुण	शोक
४	वीर	उत्साह
५	रौद्र	क्रोध
६	भयानक	भय
७	वीभत्स	घृणा
८	अद्भुत	विस्मय
९	शान्त	निर्वेद
१०	वात्सल्य	स्नेह

सञ्चारीभाव ३२ माने गये हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—

निर्वेद शंका मद मोह ग्लानि ।
 उन्माद आवेग विषाद हर्ष ॥
 व्रीडा असूया अवहित्य धैर्य ।
 चिन्ता अपस्मार वितर्क गर्व ॥१॥

श्रौत्सुक्य जाड्य स्मृति दैन्य त्रास ।
 विबोध निद्रा मति व्याधि स्वप्न ॥
 आलस्य मृत्यु श्रम उग्रता ये ।
 सञ्चारि वापत्य अमर्ष जानो ॥२॥

रसोंके उदाहरण

संयोग-शृङ्गार

(१)

राघव बोले देख जानकीके आननको—
‘स्वर्गगाका कमल मिला कैसे काननको ?’
‘नील मधुपको देख वहीं उस कंजकलीने
स्वयं आगमन किया’—कहा यह जनक-ललीने ।

—जयशंकर ‘प्रसाद’

(२)

देखन मिस मृग-बिहँग-तरु, फिरति बहोरि-बहोरि ।
निरखि-निरखि रघुबीर-छुबि, बाढ़ी प्रीति न थोरि ॥

—तुलसीदास

वियोग-शृङ्गार

(१)

यह सकल दिशाएँ आज रो-सी रही हैं,
यह सदन हमारा है हमें काट खाता ।
मन उचट रहा है, चैन पाता नहीं है,
विजन विपिन में है भागता-सा दिखाता ।
रुदन-हित, न जाने, कौन क्यों है बुलाता,
सखि, हृदय हमारा दग्ध क्यों हो रहा है ?
प्रिय विरह-घटाएँ घेरती आ रही हैं,
घहर-घहर, देखो, हैं कलेजा कँपती ।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(२)

राम वियोग कहा सुनु सीता । मो कहँ सकल भयेउ विपरीता ॥
 नूतन किसलय मनहु कृसानू । काल-निसा सम निसि, ससि भानू ॥
 कुबलय-बिपिन कुन्त-बन सरिसा । बारिद तप्त-तेल जनु बरिसा ॥
 जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग-साँस सम त्रिविध समीरा ॥

—तुलसीदास

हास्य-रस

(१)

घोड़ा गिरयो घर बाहर ही महाराज कछु उठवावन पाऊँ ।
 ऐंड़ो परयो बिच पैंड़ोइ माँझ चलै पग एक ना कैसे चलाऊ ॥
 होय कहारनको जु पै आयसु डोली चढ़ाय यहाँ लगि लाऊँ ।
 जीन धरौं कि धरौं तुलसी मुख देहुँ लगाम कि राम कहाऊँ ॥

(२)

कारीगर कोउ करामात कै बनाइ लायो,
 लीन्हों दाम थोरी जानि नई सुघराई ।
 रायजूको रायजू रजाई दीन्हों राजो ह्वैके,
 सहरमें ठौर-ठौर सोहरत भई है ॥
 'बेनी कवि' पाइकै अघाय रहै घरी द्वैक,
 कहत न बनै कछु ऐसी मति ठई है ।
 साँस लेत उड़िगो उपल्ला औ भितल्ला सबै,
 दिन द्वैके बाती हेत रुई रह गई है ॥

करुण-रस

(१)

प्रिय-मृत्युका अप्रिय महा संवाद पाकर विषभरा ।
 चित्रस्थ-सी, निर्जीव-सी हो रह गई हत उत्तरा ॥

संज्ञा-रहित तत्काल ही फिर वह धरापर गिरपड़ी ।
उस समय मूर्छा भी अहो ! हितकर हुई उसको बड़ी ॥

× × × ×

अपने जनों द्वारा उठाकर समरसे लाये हुए ।
व्रण-पूर्ण, निष्प्रभ और शोणित-पंकसे छिाये हुए ॥
प्राणेश-शवके निकट जाकर चरम दुख सहती हुई ।
वह नववधू फिर गिर पड़ी 'हा नाथ हा' कहती हुई ॥

× × × ×

फिर पीटकर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई ।
कुररी सदृश सकरुण गिरासे दैन्य दरसाती हुई ॥
बहु विधि विलाप-प्रलाप वह करने लगी उस शोकमें ।
निज-प्रिय-वियोग-समान दुख होता न कोई लोकमें ॥

— मैथिलीशरण गुप्त

अहह ! अधम आँधी, आ गई तू कहाँसे ?
प्रलय-घन-घटा-सी छा गई तू कहाँसे ?
पर दुख-सुख तूने हा ! न देखा न भाला ।
कुसुम अधखिला ही हाय ! यों तोड़ डाला ॥१॥

तड़प-तड़प माली अश्रुधारा बहाता ।
मलिन मलिनियाँका दुःख देखा न जाता ॥
निठुर, फल मिला क्या व्यर्थ पीड़ा दियेसे ?
इस नवलतिकाकी गोद सूनी कियेसे ? ॥२॥
सहृदय जनके जो कंठका हार होता ।
मुदित मधुकरीका जीवनाधार होता ॥

वह कुसुम रङ्गीला धूलमें जा पड़ा है ।
नियति, नियम तेरा भी बड़ा कड़ा है ॥३॥

—रूपनारायण पाण्डेय

वीर-रस

युद्धवीर

(१)

इन्द जिमि जंभपर, बाढ़व सुअंभपर,
रावन सदंभपर रघुकुल-राज है ।
पौन बारिबाहपर, संभु रतिनाहपर,
ज्यों सहसबाहुपर राम द्विजराज है ॥
दावा द्रुम-दंडपर, चीता मृग-झुण्डपर,
'भूखन' वितुण्डपर जैसे मृगराज है ।
तेज तम-अंशपर, कान्ह जिमि कंसपर,
त्यों मलिच्छ-बंसपर सेर सिवराज है ॥

—भूषण

दानवीर

(१)

हाथ गह्यो प्रभुको कमला, कहै, नाथ, कहा तुमने चित धारी ?
तंदुल खाय मुठी दुइ, दीन कियो तुमने दुइ-लोक बिहारी ।
खाय मुठी तिसरी अब, नाथ, कहा निज बास की आस बिसारी ?
रंकहि आप समान कियो, अब चाहत आपहि होन भिखारी ।

—नरोत्तमदास

(२)

संपति सुमेरकी कुबेरकी जु पावै ताहि
तुरत लुटावत, बिलंब उर धारै ना ।

कहै पदमाकर, सो हेम हय हाथिनके
हलके हजारनके बितर बिचारै ना ॥
गंज गज बकस महीप रघुनाथराव
पाय गज धोखे कहूँ काहु देह डारै ना ।
याही डर गिरिजा गजाननकों गोइ रही,
गिरितैं, गरेतैं, निज गोदतैं, उतारै ना ॥
—पद्माकर भट्ट

रौद्र रस

(१)

सबनके ऊपर ही ठाड़ो रहिबेके जोग
ताहि खड़ो कियो छ-हजारिनके नियरे ।
जानि गैर-मिसल, गुसैला गुस्सा धारि उर
कीन्हो ना सलाम, ना बचन बोले सियरे ॥
भूखन भनत, महाबीर बलकन लागो,
सारी पातसाहीके उड़ाये गये जियरे ।
तमकतैं लाल मुख सिवाकी निरखि भये
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ॥
—भूषण

(२)

श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे ।
सब शोक अपना भूलकर करतल-युगल मलने लगे ॥
'संसार देखे अब हमारे शत्रु रणमें मृत पड़े'—
करते हुए यह घोषणा वे हो गये उठकर खड़े ॥
उस काल मारे क्रोधके तनु काँपने उनका लगा ।
भानो हवाके जोरसे सोता हुआ सागर जगा ।

मुख बाल-रवि सम लाल होकर ज्वाल-सा बोधित हुआ !
 प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ !
 युग नेत्र उनके जो अभी थे पूर्ण जल की धारसे !
 अब रोषके मारे हुए वे दहकते अंगार-से !

— मैथिलीशरण गुप्त

भयानक रस

(१)

समस्त सपों' सँग श्याम ज्यों कढ़े,
 कलिदकी नंदिनिके सुअंकसे ।
 खड़े किनारे जितने मनुष्य थे,
 सभी महाशंकित भीत हो उठे ॥
 हुए कई मूर्छित घोर त्राससे,
 कई भगे, मेदिनीमें गिरे कई ।
 हुई यशोदा अति ही प्रकंपिता,
 ब्रजेश भी व्यस्त-समस्त हो गये ॥

— अयोध्यासिंह उपाध्याय

(२)

लपट कराल ज्वाल-जाल माल चहुँ दिसि,
 धूम अकुलाने, पहिचानै कौन काहि रे ।
 पानीको जलात, बिललात, जरे जात गात,
 परे पाइमाल जात, आत, तू निबाहि रे ॥
 प्रिया तू पराहि, नाथ-नाथ तू पराहि, बाप
 बाप तू पराहि, पूत-पूत तू पराहि रे ।
 तुलसी, विलंक लोग व्याकुल बिहाल कहैं—
 लेहि, दससीस,, अब बीस चख चाहि रे ॥

— तुलसीदास

बीभत्स रस

(१)

सिरपै बैद्यो काग आँग दोउ ख्वात निकारत ॥
खींचत जीभहिं स्यार, अतिहि आनंद उर धारत ॥
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि-खोदि के मांस उचारत ।
स्वान अंगुरिन काटि-काटि कै खान विचारत ॥
बहु चील नोचि लै जात तुच, मोद मढ़्यो सबको हियो !
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भित्थारिन कहँ दियो ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

अद्भुत रस

(१)

झहिने बेद पढ़ैं चतुरानन, सामुहैं ध्यान महेस धर्यो है ।
बाएँ दुआँ कर जोरि सुसेवक देवन साथ सुरेश खर्यो है ॥
एतनि बीच अनेक लिये धन पाँयनि आनि कुबेर पर्यो है ।
देखि बिभौ अपनौ सपनौ बपुरौ वह बाँभन चौंकि पर्यो है ॥

—नरोत्तमदास

(२)

लीन्हों उखारि पहार बिसाल, चलयो तेहि काल बिलंब न लायो ।
मारुतनंदन मारुतको, मनको खगराजको बेग लजायो ॥
सीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिये उपमाको समाउ न आयो ।
मानो प्रतच्छ परबतकी नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो ॥

शान्त रस

(१)

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँपुरको तजि डारौं ।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधिको सुख नंदकी गाय चराय बिसारौं ॥

कोटिक हों कलधौतके धाम करीलके कुंजन ऊपर बारों ।
रसखान कहै इन आँखिनसौं ब्रजके बन-बाग तड़ाग निहारों ॥

—रसखान

(२)

मानुष हों तौ वही, रसखान, बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन ।
जो पसु हों तौ कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्दकी धेनु मँझारन ॥
पाहन हों तौ वही गिरिको जो भयो ब्रज-छत्र पुरंदर-धारन ।
जो खग हों तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी-कूल कंदबकी डारन ॥

—रसखान

(३)

पानी केरा बुदबुदा, अस मानसकी जात ।
देखत ही छिप जायगी ज्यों तारा परभात ॥
सातों नोबत बाजतीं, होत छतीसों राग ।
ते मन्दिर खाली पड़े, बैसण लागे काग ॥
गहरी लाली देखकर फूल गुमान भये ।
केते बाग जहानके लग-लग सूख गये ॥
माली आवत देखिकै कलियन करी पुकार ।
फूले-फूले चुन लिए कालिह हमारी बार ॥

—कबीर

वात्सल्य रस

(१)

मैं बचपनको बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी ।
नंदन-वन-सी फूल उठी वह छोटी-सी कुटिया मेरी ॥
माँ ओ—कहकर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी ।
कुछ मुँहमें कुछ लिये हाथमें, मुझे खिलाने आई थी ॥

पुलक रहे थे अंग हगोंमें कौतूहल था छलक रहा ।
 मुँहपर थी आह्लाद-लालिमा, विजय-गर्व था झलक रहा ॥
 मैंने पूछा यह क्या लाई ? बोल उठी वह—माँ, काओ !
 हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशीसे, मैंने कहा तुम्हीं खाओ ॥
 पाया बचपन ने फिरसे बचपन बेटी बन आया ।
 उसकी मंजुल मूर्ति देखकर, मुझमें नवजीवन आया ॥
 मैं भी उसके साथ खेलती, खाती हूँ तुतलाती हूँ ।
 मिलकर उसके साथ स्वयं मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ॥

—सुभद्राकुमारी

(२)

बलि-बलि जाऊँ, मधुर सुर गावहु ।
 अबकी बार मेरे कुँवर कन्हैया नन्दहि नाचि दिखावहु ।
 तारी देहु आपने करकी, परम प्रीति उपजावहु ॥
 बाँह उचाइ काल्हि की नाईं धौरी धेनु बुलावहु ।
 नाचहु नैकु, जाऊँ बलि तेरी, मेरी साध पुरावहु ॥
 कनक-खंभ प्रतिबिम्बित सिसु इक, लवनी ताहि खवावहु ।
 सूर श्याम मेरे उरतें कहूँ टारे नेकु न भावहु ॥

—सूरदास

परिशिष्ट २

अलङ्कार-निरूपण

अलङ्कार शब्दका नाम है गहना । अलङ्कार कविताके भूषण हैं, जिनसे वह सजाई जाती है । जिन साधनोंसे कविताकी शोभा बढ़ती है, उनको अलङ्कार कहते हैं अथवा यों कहना चाहिए कि वर्णनका चमत्कार-पूर्ण ढङ्ग ही अलङ्कार है ।

अलङ्कारोंके दो भेद हैं—(१) शब्दालङ्कार और (२) अर्थालङ्कार ।

शब्दालङ्कारका चमत्कार प्रयुक्त शब्दमें रहता है । यदि शब्दको निकाल करके वैसे ही अर्थका दूसरा शब्द रख दें, तो कविताका अर्थ तो बना रहेगा ; पर चमत्कार नष्ट हो जायगा ; जैसे—

मुख मयंक सम मंजु मनोहर

इस पंक्तिमें म अक्षर कई बार आया है ; इसलिए यहाँपर अनुप्रास अलङ्कार है । यदि इसको बदलकर हम यों कर दें—

सुन्दर बदन कलाधर जैसा

तो अर्थ और छन्द में कोई हेर-फेर नहीं होता ; पर 'म' अक्षर बहुत बार नहीं आनेसे अनुप्रासका चमत्कार नष्ट हो गया ; अतः अनुप्रास शब्दालङ्कार है ।

अर्थालङ्कारका चमत्कार अर्थ में रहता है । वहाँ शब्दोंके इस प्रकार बदल देनेपर भी चमत्कार कायम रहता है, नष्ट नहीं हो जाता ; जैसे—

मुख मयंक सम मंजु मनोहर

यहाँ मुखको चन्द्रमाके समान सुन्दर बताया गया है ; अतः उपमा अलङ्कार हुआ । अब यदि इसको ऊपर की तरह बदल दें—

सुन्दर बदन कलाधर जैसा

तो मुख और चन्द्रमा की उपमा ज्यों-की-त्यों कायम रहती है, नष्ट नहीं होती । अतः उपमा अर्थालङ्कार है ।

शब्दालङ्कार के भेद

शब्दालङ्कारके मुख्य चार भेद हैं—(१) अनुप्रास, (२) ज़ाटानुप्रास, (३) यमक और (४) श्लेष ।

१ अनुप्रास

जब एक या अनेक अक्षर एकसे अधिक बार आवें ।

उदाहरण

(१) तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये ।

यहाँ त अक्षर पाँच बार आया है ।

(२) भव्य भावों में भयानक भावना भरना नहीं ।

यहाँ भ अक्षर पाँच बार आया है ।

(३) किंतु कलाधर ने डाला है किरण जाल क्यों उसकी ओर ।

यहाँ क अक्षर अनेक बार आया है ।

(४) भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिलसाहकी सेना ।

यहाँ र और क ये दो अक्षर कई बार आये हैं ।

(५) सेवा समय दैव वन दीन्हा । मोर मनोरथ फलित न कीन्हा ॥

यहाँ स, द और म ये अक्षर दो-दो बार आये हैं ।

(६) मेरे इस निश्चय निश्चय ने झटसे हृदय किया हलका ।

यहाँ नि और श्च ये दो वर्ण एक साथ दो दो बार आये हैं और ह वर्ण भी दो बार आया है ।

जब एक स्थानसे उच्चारित होनेवाले कई एक वर्णोंका प्रयोग होता है, तो उसे श्रुत्यनुप्रास कहते हैं ; जैसे—

तुलसिदास सीदति निसदिन देखत तुम्हारि निठुराई ।

यहाँ मोटे टाइपमें छपे १५ अक्षर ऐसे हैं, जिनका उच्चारण दाँतों से होता है ; अतः बहुतसे दन्त्य अक्षरोंके प्रयोगसे श्रुत्यनुप्रास हुआ ।

२ लाटानुप्रास

जब एक (या अधिक) शब्द एकसे अधिक बार आवे और प्रत्येक बार अर्थ एक ही हो पर ; अन्वय भिन्न हो, तब लाटानुप्रास होता है ; जैसे—

(१) रानी गई सिंघार, चिता उसकी अब दिव्य सवारी थी ।

मिजा तेजसे तेज, तेजकी वह सच्ची अधिकारी थी ॥

यहाँ एक ही तेज शब्द तीन बार आया है और तीनों बार उसका वही अर्थ है ।

(२) हर घड़ी, हर अवसरों पर हर जगह

हरि-गुनोंका गान ही है हो रहा ।

यहाँ हर शब्द एक ही अर्थ में तीन बार आया है ।

(३) नाहिं काहू कौ रह्यौ जौ लौं रह्यो नभ माहिं ।

यहाँ रह्यो शब्द एक ही अर्थ में दो बार आया है ।

(४) पूत कपूत तो क्यों धन संचै ।

पूत सपूत तो क्यों धन संचै ।

- (५) जब दयावाले बने न दया दिखा
तब दयाका गान क्या करते रहे ।

नोट—ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक बार अन्वय एक ही शब्दके साथ न हो, या यदि एक ही शब्दके साथ हो, तो एक-सा न हो, नहीं तो बीप्सा अलङ्कार हो जायगा ; जैसे—

- (१) सच-सच बतला दो प्राणप्यारा कहाँ है ?
(२) शुक भर-भर आँखें भौनको देखता है ।

३ यमक

जब कोई शब्द या शब्दांश एकसे अधिक बार आवे और प्रत्येक बार एक ही अर्थ न हो (अर्थात् या तो भिन्न अर्थ हो, या कोई अर्थ न हो) ; जैसे—

- (१) अपूर्व थी श्यामल पत्र-राशि में
कदंबके पुष्प-कदंबकी छटा ।

यहाँ कदंब शब्द दो बार आया है । पहली बार उसका अर्थ कदंब नामक पेड़ और दूसरी बार समूह है ।

- (२) जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोकमें फैला फिर आलोक ।

यहाँ लोक शब्द दो बार आया है । प्रथम बार उसका अर्थ संसार और दूसरी बार कोई अर्थ नहीं है ; क्योंकि आलोक शब्दका अंश है ।

- (३) नाच रहे हैं अब भी पत्ते मनसे सुमन महकते हैं ।

यहाँ मन शब्द दो बार आया है । पहली बार पूरा शब्द है और दूसरी बार शब्दांश ।

- (४) लोचन लुभाते हुए लोल वृन्त दोलपर
फूल रहे फूलकर फूल उपवन में ।

यहाँ फूल शब्द तीन बार आया है । प्रथम बार अर्थ है प्रसन्न होना, दूसरी बार खिलना और तीसरी बार पुष्प ।

(५) ऊसरके सर भरति निरस महि रस सरसावति ।

यहाँ सर शब्द तीनों बार आया है । दूसरी बार पूरा शब्द है और पहली तथा तीसरी बार शब्दांश ।

४ श्लेष

जब ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया जाय, जिनके एकसे अधिक अर्थ निकलते हों ; जैसे—

(१) विपुल धन, अनेकों रत्न, हो साथ लाए
प्रियतम बतला दो लाल मेरा कहाँ है ?

यहाँ लाल के दो अर्थ हैं—(१) मणि, (२) प्रियपुत्र (श्रीकृष्ण) ।

(२) चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर ।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥

यहाँ वृषभानुजा और हलधरके दो अर्थ हैं—

वृषभानुजा = (१) वृषभानुकी पुत्री ; अर्थात्—राधा
(२) वृषभकी बहिन ; अर्थात्—गाय

हलधर = (१) बलराम
(२) हलको धारण करनेवाला ; अर्थात्—बैल

(३) रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून ।

पानी गये न ऊबरै, मोती मानुष चून ॥

पानी जानेपर मोती, मनुष्य और चून किसी कामके नहीं रह जाते । यहाँ पानीके तीन अर्थ हैं, जो क्रमशः मोती, मनुष्य और चूनके पक्षमें लगते हैं—मोती-पक्षमें पानीका अर्थ कान्ति, मनुष्य-पक्षमें प्रतिष्ठा और चून के पक्षमें जल है ।

अर्थालङ्कार

१ उपमा

जब किसी वस्तुको किसी अन्य प्रसिद्ध वस्तुके समान बताया जाय ; जैसे—

(१) मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर है ।

यहाँ मुख को चन्द्रमा के समान सुन्दर बताया गया है ।

(२) कोमल कुसुम-समान देह, हा, हुई तस अङ्गारमयी ।

यहाँ देहको कुसुमके समान कोमल बताया गया है ।

(३) नवल कोमल कदलि-दल सम करनसों सहराय ।

यहाँ हाथोंको कदलि-दलोंके समान कोमल बताया गया है ।

उपमामें चार बातें होती हैं—

(१) उपमेय—जिस वस्तु का वर्णन हो रहा हो ।

(२) जिसके समान उपमेयको बताया जाय ।

(३) वाचक शब्द—जिस शब्दके समान दोनोंकी समानता सूचित की जाय (सा, जैसा, ऐसा, समान, सदृश, यथा इत्यादि)

और

(४) साधारण धर्म—जिस विशेषता या गुणोंके कारण दोनोंको समान बताया जाय, यह विशेषता उपमेय और उपमानमें पाई जानी चाहिए ।

ऊपरके उदाहरणमें उपमेय-उपमान आदि इस प्रकार हैं—

(१) मुख—उपमेय, चन्द्रमा—उपमान, समान—वाचक शब्द, सुन्दर—साधारण धर्म ।

(२) देह—उपमेय, कुसुम—उपमान, समान—वाचक शब्द, कोमल—साधारण धर्म ।

(३) कर—उपमेय, कदलि-दल—उपमान, सम—वाचक शब्द ।
उपमा के दो भेद हैं—

(१) पूर्णोपमा—जब उपमेय, उपमान, वाचक शब्द और साधारण धर्म चारों शब्दों द्वारा कहे गये हों ।

(२) लुप्तोपमा—जब उन चारोंमेंसे कोई एक या दो या तीन लुप्त हों ; अर्थात्—शब्द द्वारा उनका कथन न किया गया हो ।

(१) मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर है ।

यह पूर्णोपमा है ; क्योंकि चारोंका उल्लेख शब्द द्वारा किया गया है ।

(२) मुख चन्द्रमाके समान है ।

यहाँ केवल तीनका उल्लेख शब्द-द्वारा किया गया है, साधारण धर्मका उल्लेख शब्द-द्वारा नहीं किया गया, उसका अध्याहार करना पड़ता है । उसके लुप्त होनेसे यहाँ लुप्तोपमा हुई ।

(३) मुख-चन्द्र सुन्दर है ।

यहाँ वाचक शब्दका उल्लेख शब्द-द्वारा नहीं किया गया ; अतः वह लुप्त है । यहाँ भी लुप्तोपमा हुई ।

(४) चन्द्रमुख ।

यहाँ वाचक शब्द और साधारण धर्म दोनों लुप्त हैं ।

नोट—(१) जिस उपमामें साधारण धर्म लुप्त होता है, उसे धर्मलुप्ता उपमा कहते हैं ।

(२) जिस उपमामें वाचक शब्द लुप्त होता है, उसे वाचकलुप्ता उपमा कहते हैं ।

(३) जिस उपमामें साधारण धर्म और वाचक शब्द दोनों लुप्त होते हैं, उसे वाचक-धर्मलुप्ता उपमा कहते हैं ।

उपमाके और उदाहरण

- (१) उदित कुमुदिनी-नाथ हुए प्राची से ऐसे
सुधा-कलश रत्नाकरसे उठता हो जैसे ।
- (२) स्फटिक-शिला आसीन राम-वैदेही ऐसे
निर्मल जलमें नील कमल नलिनी हों जैसे ।
- (३) सिंधु-सा विस्तृत और अथाह,
एक निर्वासितका उत्साह ।

२ अनन्वय

जहाँ उपमेय का उपमान न मिल सकनेके कारण उपमेयको ही उपमान भी बना दिया जाय ; अर्थात्—उपमेयकी उपमा उपमेयसे ही दी जाय, वहाँ अनन्वय होता है ; जैसे—

- (१) अब यद्यपि दुर्बल आरत है ।
पर भारतके सम भारत है ॥

यहाँ भारत उपमेय है और उपमान भी वही है ; अर्थात्—भारतको भारतकी ही उपमा दे दी गई है ।

- (२) सुन्दर नन्दकिशोर-से सुन्दर नन्दकिशोर ।

सुन्दर नन्दकिशोरके समान सुन्दर, सुन्दर नन्दकिशोर ही हैं । दूसरा उपमान न होनेके कारण उपमेयको ही उपमान बना दिया गया है ।

- (३) लही न कतहुँ, हार हिय मानी ।
इन सम ये, उपमा उर आनी ॥

३ रूपक

रूपकमें एक वस्तुपर दूसरी वस्तुका आरोप किया जाता है ; अर्थात्—एक वस्तुको दूसरी वस्तु बना लिया जाता है ; जैसे—

- (१) मुख-कमल या मुखरूपी कमल ।

यहाँ मुखपर कमलका आरोप किया गया है, यानी मुखको कमल बनाया गया है ।

(२) मृत्यु एक सरिता है जिसमें श्रमसे कातर जीव नहाकर ।

फिर नूतन धारण करता है काया-रूपी वस्त्र बहाकर ॥

यहाँ मृत्युको सरिता और कायाको वस्त्र बनाया गया है ।

(३) दुःखजलनिधि-डूबीका सहारा कहाँ है ?

यहाँ दुःखको समुद्र बनाया गया है ।

(४) आशा मेरे हृदय-मरुकी मंजु मंदाकिनी है ।

यहाँ हृदयको मरुभूमि और आशाको मन्दाकिनी (गंगा) बनाया गया है ।

(५) प्रातः प्रातकृत करि रघुगई । तीर्थराज देख प्रभु ताई ॥

सचिवसत्य, श्रद्धा प्रियनारी । माधव सरिसमीत हितकारी ॥

सेन सकल तीर्थ बर बीरा । कलुख-अनीक-दलन रनधोरा ॥

संगम सिंघासन सुठि सोहा । छत्र-अछयबट मुनिमन मोहा ॥

चैवर जमुन अरु गंगतरंगा । देखि होंहि दुखदारिद भंगा ॥

यहाँ तीर्थराज प्रयागको राजा बनाया गया है ; जैसे—

राजा	तीर्थराज	शत्रु	पाप
मन्त्री	सत्य	सिंहासन	त्रिवेणीका संगम
रानी	श्रद्धा	छत्र	अछयबट
मित्र	विष्णु	चैवर	गंगा-यमुना की तरंगें
सेना	तीर्थस्थान		

नोट—रूपकके दो भेद होते हैं—(१) सांग—जब किसी वस्तुपर दूसरी वस्तुका आरोप करके अंगोंका भी आरोप किया जाय, जैसे ऊपर उदाहरण (४) में । निरंग—जब केवल एक वस्तुपर

दूसरी वस्तुका आरोप किया जाय और अंगोंका आरोप न किया जाय । जैसे, ऊपरके उदाहरण (१) और (३) में ।

४ उत्प्रेक्षा

(१) जब एक वस्तुमें दूसरी वस्तुकी सम्भावना की जाय ; अर्थात्—एक वस्तु को दूसरी वस्तु मान लिया जाय (वस्तुत्प्रेक्षा);

(२) जब अहेतुको हेतु मान लिया जाय (हेतुत्प्रेक्षा); या

(३) जब अफलको फल मान लिया जाय (फलत्प्रेक्षा) ।

नोट—मानो, मनहु, मनो, जनु इत्यादि इस अलङ्कारके वाचक शब्द हैं ।

(१) मुख मानो कमल है ।

मुखके कमल न होनेपर भी उसको कमल मान लिया गया है ।

(२) कूजत बिबिध बिहंग संग अति आनंद साने ।

मानहु मंगल-पाठ पढ़त द्विजगन उमगाने ॥

यहाँ विहंगोंको द्विज और उनके कूजन को वेदपाठ माना गया है ।

(३) मुख सम नहिं याते मनो चंदहि छाया छाया ।

चन्द्रको छाया (कालिमा) इसलिये नहीं छाई रहती कि वह मुखके समान नहीं है । छायाके छाये रहनेके हेतु मुखके समान न होना नहीं है, फिर भी उसे हेतु माना गया है ।

(४) तब मुख समता लइन ससि क्षीरसिन्धु नित न्हात ।

चन्द्रमा नित्य क्षीरसिन्धु में नहाता (डूबता है) है ; पर मुखकी समता पानेके फलकी इच्छा करके नहीं । यह फल न होनेपर भी इसे फल माना गया है ।

५ भ्रान्तिमान्

जब एक वस्तुमें दूसरी वस्तुका धोखा हो जाय , जैसे—

पेशी समझ माणिक्य को वह विहंग, देखो, ले चला ।

यहाँ माणिक नामक लालमणिमें बिहंगको मांसपेशी का भ्रम हो गया है ।

६ .सन्देह

जब किसी वस्तु में सादृश्यके कारण एकसे अधिक वस्तुओंके होनेकी सम्भावना पाई जाय और निश्चय न हो कि वह वस्तु वास्तवमें कौन-सी है ; जैसे—

वह शशि है अथवा कमल, अथवा है मुख-मंजु ।

मुखको देखकर तीनोंके होनेकी संभावना पाई जाती है और निश्चय नहीं होता कि क्या है ।

७ उल्लेख

(१) जब किसी वस्तुको अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से देखें, सुनें, समझें या वर्णन करें ।

(२) जब किसी वस्तुको एक व्यक्ति अनेक प्रकारसे वर्णन करे ।

(१) जिनकी रही भावना जैसी । प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी ॥
विदुषन प्रभु विराट-मय-दीसा । बहुमुखकर पग लोचन-सीसा ॥
देखहि भूप महारनधीरा । मनहु वीर-रस धरे सरीरा ॥
पुरवासिन देखेउ दोउ भाई । नरभूखन लोचन सुखदाई ॥
सहित विदेह बिलोकहि रानी । सिसु-सम प्रीति न जाय बखानी ॥

यहाँ एक ही रामको विद्वज्जनों, राजा लोगों, पुरवासियों और जनक तथा उनकी रानीने कई प्रकार से देखा ।

(२) यह मेरी गोदीकी शोभा, सुख सुहागकी है लाली ।

शाहीशान भिखारिनकी है, मनोकामना मतवाली ॥

दीपशिखा है अंधेरेकी, घनी घटाकी उजियाली ।

उषा है यह कमलभृङ्गकी, है पतझड़की हरियाली ॥

यहाँ एक बालिकाका उसकी माता कई प्रकारसे वर्णन करती है ।

८ अपहृति

जब एक बातको छिपाकर दूसरी बातका होना कहा जाय । इसमें प्रायः सत्य बातका निषेध करके असत्य बातका होना कहा जाता है ; जैसे:—

(१) (मुखको देखकर कहना) यह मुख नहीं चन्द्रमा है ।

यहाँ सत्य बात मुखका निषेध करके चन्द्रमा का होना कहा गया है ।

(२) अमृत अमृत नहीं है सत्संग ही अमृत है ।

यहाँ अमृतके गुणका अमृत में होना निषेध करके सत्संगमें होना बताया गया है ।

(३) अर्धनिशा यह आवे भौन,
सुन्दरता बरनै कहि, कौन ?
देखत ही मन होय अनन्द;
क्यों सखि, पिय मुख ? ना सखि, चन्द ।

प्रिय-मुखका कथन करते-करते उसका निषेध कर दिया और असत्य चन्द्रका होना कहा ।

(४) मुखके मिस देखहु उग्यो यह मयङ्क निकलङ्क ।

मुखके मिस चन्द्रमा उगा अर्थात् मुख नहीं उगा, किन्तु चन्द्रमा उगा । यहाँ सत्य बात मुखका निषेध करके असत्य चन्द्रमाका होना कहा गया ।

(५) कह प्रभु हंसि जनि हृदय डराहू । लूक न अशनि केतु नहिं राहू ॥

ये किरीट दसकन्धर केरे । आवत बालि-तनय के प्रेरे ॥

किरीटोंको देखकर बानरोंकी भ्रम हुआ कि कोई दूटा हुआ तारा है या वज्र है या राहुकेतु हैं और वे डर गये । श्रीरामने सच्ची बात बतलाकर उनका भय दूर कर दिया । यहाँ असत्य बातका निषेध करके सत्य बात बताई गई है ।

६ व्याजस्तुति

जब निन्दाके बहाने स्तुति की जाय या स्तुतिके बहाने निन्दाकी जाय ।

(१) मन क्रम-बचनों से अर्चना जो तुम्हारी
निस-दिन करते हैं, श्याम, तू हा ! उन्हीं की ।
जनम-जनमकी है देह को छीन लेता
अथ नटवर, तेरे ढंग ये हैं न अच्छे ॥

भगवान्की अर्चना करनेसे देह-रूपी जन्म-जन्मकी कमाईको छीन लेते हैं । कमाई छीबनेवाला कहनेसे भगवान्की निन्दा जान पड़ती है, पर वास्तवमें स्तुति है कि भगवान्की अर्चना करनेसे देह-धारण (संसार-में आवागमन) सदाके लिये छूट जाता है और मोक्ष मिल जाता है ।

(२) है निष्काम न दूसरो तव समान जग माहिं ।
हरिगुण मुक्तामालको कंठ करै कभु नाहिं ॥

मुक्ता मालसे दूर रहता है, अतः बड़ा निष्काम (त्यागी) है । यह स्तुति जान पड़ती है ; पर वास्तवमें निन्दा है कि हरिगुणरूपी मुक्ताओंको ग्रहण नहीं करता (हरिनाम का स्मरण नहीं करता), अतः नीच है ।

१० दृष्टान्त

जब कोई बात कहकर उदाहरणके तौरपर उससे मिलती-जुलती एक दूसरी बात फिर कही जाय ; जैसे:—

(१) करगस सम दुर्जन बचन, रहे संतजन टारि ।
बिजुली परी समुद्रमें, कहा सकेगी जारि ॥

पहले एक बात कही गई कि तीरके समान दुर्जनके वचन सज्जनों पर प्रहार नहीं कर सकते । इसके उदाहरण में उससे मिलती-जुलती बात कही गई कि समुद्रमें पड़ी बिजुली किसी की कुछ हानि नहीं कर सकती ।

(२) निपट अबुध समझै कहा, बुध-जन-वचन-विलास ।

कबहुँ भेक न जानही अमल कमल की बास ॥

पहले एक बात कही गई कि मूर्ख व्यक्ति विद्वानोंके वचनोंके सौन्दर्यको नहीं समझ सकता । इसका उदाहरण एक दूसरी बात कहकर दिया कि जैसे सुन्दर कमलकी सुगन्धिकी कदर मेंढक नहीं कर सकता ।

नोट—अर्थान्तरन्यासमें एक बात सामान्य और दूसरी विशेष होती है ।

दृष्टान्तमें ऐसा नहीं होता । इसमें दोनों बातें एक-सी होती हैं ।

११ अर्थान्तरन्यास

जब कोई सामान्य बात कहकर उसके समर्थनमें दूसरी विशेष बात कही जाय, या जब कोई विशेष बात कहकर उसके समर्थनमें दूसरी सामान्य बात कही जाय ; जैसे—

सामान्यका विशेषसे समर्थन

(१) जाहि मिले सुख होत है, तिहि बिछुरे दुख होइ ।

सूर उदय फूलै कमल, ता बिनु सकुचं सोइ ॥

पहले एक सामान्य बात कही कि जिस व्यक्तिके मिलनेसे सुख होता है, उसके बिछुड़नेसे दुःख होता है । फिर एक विशेष बात कमल और सूर्यकी कहकर इस सामान्य कथनका समर्थन किया कि जिस प्रकार सूर्यके आनेसे कमलको सुख होता है ; पर उसके बिछुड़ जाने से कमल संकुचित हो जाता है ।

(२) अति परिचयते होत है, अवसि अनादर-भाय ।

मलियागिरिकी भीलनी, चन्दन देत जराय ॥

यहाँ पहले एक सामान्य बात कही कि अत्यन्त परिचय होनेसे अनादरका भाव उत्पन्न हो जाता है । इसका समर्थन मलयाचल पर्वत-की भीलनीका उदाहरण देकर किया गया कि जिस प्रकार मलयाचलमें

रहनेवाली भीलनी चन्दनको ईंधनके काममें लाती है। मलयानलमें चन्दन बहुत होता है ; इसलिए ईंधनकी भाँति जलाया जाता है ।

विशेषका सामान्यसे समर्थन

(३) दियो अभय अमरन्ह, कियो हर हालाहल पान ।

पर-उपकारन हित सहै कष्ट कहा न महान ? ॥

यहाँ पहले शङ्कर-सम्बन्धी विशेष बात कही कि शङ्करने समुद्र-मन्थनसे निकले हुए हालाहल विषका पान कर लिया और देवताओंको अभयदान दिया (स्वयं कष्ट सहन करके भी दूसरोंका उपकार किया) । इस बातका समर्थन एक सामान्य बात कहकर करते हैं कि महापुरुष परोपकर के लिए क्या कष्ट नहीं सहते ?

१२ अन्योक्ति

जब प्रस्तुत के समान किसी अप्रस्तुतका वर्णन करके उससे उस प्रस्तुतका बोध कराया जाय । (प्रस्तुत = जिसका वर्णन अभीष्ट हो, जिसका वर्णन करना हो, जो प्रसंगका विषय हो । अप्रस्तुत = जिसका वर्णन न करना हो, जो प्रसंगका विषय न हो) जब किसी वस्तुका सीधा वर्णन न किया जाय ; किन्तु उसके समान किसी दूसरी वस्तुका वर्णन करके उससे उस वस्तुका बोध कराया जाय ; जैसे—

(१) माली आवत देख करि कलियन करी पुकार ।

फूले-फूले बिन लिए काल्ह हमारी वार ॥

यहाँ वास्तवमें काल और जीवआत्माओंका वर्णन है ; पर सीधे उनका वर्णन न करके माली और कलियों के वर्णन द्वारा उनका बोध कराया गया है ।

(२) काल कराल परै कितनो पै मराल न ताकत तुच्छ तलैया ।

यहाँ मनस्वी पुरुषके अनुचित कार्य न करनेकी बात प्रस्तुत है और जिसका बोध मरालके तुच्छ तलैयाकी ओर न ताकनेकी अप्रस्तुत बातके कथन-द्वारा कराया गया है ।

(३) सेमर सुअना सेइया, दुइ ढेंदीकी आस ।
सेमर फूट चटाक दै, सुअना चला निरास ॥

(४) स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखु बिहंग बिचारि ।
बाज पराये पानिपर, तूँ पंछीनु न मारि ॥

१३—अत्युक्ति

जब शूरता, सुन्दरता, उदारता, विरह आदिका अत्यन्त वर्णन करने के लिए मिथ्यात्व-पूर्ण बात कही जाय ; जैसे—

(१) लखन सकोप बचन जब बाले । डगमगानि महि दिगज डोले ॥

यहाँ लक्ष्मण की शूरताका अत्यन्त वर्णन करने के लिए पृथ्वी के डगमगाने आदि की मिथ्या बात कही है ।

(२)—(३) पीछे भूषणकी कविताके छंद ३ और ६ देखो ।

शिवाजीकी धाककी अत्यन्त प्रशंसा करनेके लिए कई मिथ्यात्वपूर्ण बातें कही गई हैं ।

(४) चाके तनकी छाँह ढिंग जोन्ह छाँह-सी होत ।

उसका रूप इतना सुन्दर और कान्तिमान् है कि उसकी छायाके सामने चाँदनी छाया-सी जान पड़ती है, अर्थात् चाँदनी उसकी छायाकी छाया ज्ञात होती है । यहाँ सुन्दरताकी अत्यन्त प्रशंसाके लिए मिथ्या कथन किया गया है ।

(५) जाचक तेरे दानते भये कल्पतरु भूप ।

राजाने इतना दान दिया कि याचक भी कल्पवृक्ष हो गये । कल्प-वृक्ष दूसरोंसे माँगनेपर उसकी सब इच्छा पूरीकर सकता है, इसी प्रकार राजाके याचक भी कल्पवृक्षकी भाँति सबकी इच्छा पूरी करने लगे । यह उदारताकी मिथ्यात्व-पूर्ण प्रशंसा है ।

परिशिष्ट ३

छन्द-निरूपण

छन्द-भेद

छन्द दो प्रकारके होते हैं—(१) मात्रिक और (२) वर्णिक ।
मात्रिक छन्दका हिसाब मात्राओंसे होता है और वर्णिक छन्दोंका वर्णोंसे ;
अर्थात्—पहलेमें मात्राओंकी संख्या निश्चित होती है और दूसरेमें
वर्णों की । चौपाई मात्रिक छन्द है, उसके प्रत्येक चरणमें १६ मात्राएँ
होती हैं, वर्ण चाहे जितने हों । मालिनी वर्णिक छन्द है । उसके प्रत्येक
चरणमें १५ वर्ण रहते हैं और यह भी निश्चित रहता है कि कौन-सा वर्ण
ह्रस्व या दीर्घ होगा (इस प्रकारके उसके प्रत्येक चरणमें मात्राओंकी
संख्या भी निश्चित रहती है) मनहरण कवित्त एक ऐसा वर्णिक छन्द है,
जिसमें केवल वर्णोंकी संख्या निश्चित होती है, मात्राएँ चाहे जितनी हों ।

छन्दमें प्रायः चार चरण होते हैं । छप्पय और कुण्डलियोंमें छः-छः
चरण होते हैं । यदि चारों चरणोंमें मात्राओं या वर्णोंकी संख्या बराबर
हो, तो सम छन्द होता है ; जैसे—चौपाई और मालिनी । यदि पहले
और तीसरे चरणकी मात्राएँ या वर्ण बराबर हों और दूसरे और चौथे
चरणकी मात्राएँ या वर्ण बराबर हों, तो अर्धसम छन्द होता है ; जैसे—
दोहा । जो छन्द सम या अर्धसम नहीं होते, वे विषम कहे जाते हैं ।
वर्णिक छन्द दो प्रकारके होते हैं—जिन छन्दोंमें वर्णोंकी संख्या निश्चित
रहता है और साथ ही यह भी निश्चित रहता है कि कौन-सा वर्ण ह्रस्व
या दीर्घ होगा वे साधारण वर्णिक छन्द होते हैं और जिन छन्दोंमें केवल
वर्णों की संख्या ही नियत रहता है, ह्रस्व-दीर्घका नियम नहीं होता,
मुक्तक कहलाते हैं ; जैसे—मनहरण कवित्त ।

लघु-रस

वर्ण दो प्रकारके होते हैं—(१) ह्रस्व और (२) दीर्घ ; छन्द-शास्त्रमें इनको क्रमशः लघु और गुरु कहते हैं । इनके संक्षिप्त नाम 'ल' और 'ग' हैं, एवं इनके चिह्न इस प्रकारके हैं—

लघुका चिह्न है एक खड़ी पाई, जैसे (।)

गुरुका चिह्न है एक वक्र रेखा, जैसे (ऽ)

लघु वर्णकी एक मात्रा होती है और गुरु वर्णकी दो मात्राएँ । छन्द-शास्त्रमें दोसे अधिक मात्राएँ किसी वर्णकी नहीं होतीं ।

लघुवर्ण—अ इ उ ऋ और इनकी मात्रावाले व्यञ्जन ।

गुरु वर्ण (१)—आ ई ऊ ऋ ।

ए ऐ ओ औ और इनकी मात्रावाले व्यञ्जन * ।

(२) अनुस्वार और विसर्गवाले वर्ण ; जैसे—

अं, कं, दि, दुः, कः आदि ।

(३) संयुक्तवर्ण से पूर्वका वर्ण ; जैसे—

'सत्य' में स, और

'वर्ण' में व,

इस नियम का अपवाद भी देखा जाता है ; जैसे—

तुम्हारा में तु लघु एवं एकमात्रिक है ।

* सवैया इत्यादि छन्दोंमें आवश्यकतानुसार गुरुको भी लघु पढ़ना पड़ता है । देखो आगे सवैयाका उदाहरण । हिन्दीमें ह्रस्व ए और ओ भी होते हैं ; जैसे—

(१) अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता ।

इसमें मो ह्रस्व है और उसकी एक मात्रा है ।

(२) एक सुवन मिला है जो मुझे यत्न द्वारा ।

इसमें एक का ए ह्रस्व है ।

(४) छन्दके चरणके अन्तमें, आवश्यकता हा, तो लघु वर्ण भी गुरु मान लिया जाता है ; जैसे:—

जब मिला फिर भी नहिं उत्तर

यहाँ 'उत्तर' का र छन्दोंके नियमानुसार गुरु होना चाहिए ; पर है लघु । ऐसे वर्णको लघु होनेपर भी गुरु समझ लिया जाता है ।

नोट—वर्णके ऊपर चन्द्रबिन्दु (ऊँ) लगनेसे उसकी मात्रामें कोई फर्क नहीं पड़ता ; जैसे—

'हँसना' में हँ लघु है,
'साँच' में साँ गुरु है
'नहिं' में हिं लघु है,
'ऊँचा' में ऊँ गुरु है ।

गण

वर्णिक छन्दोंमें गणोंका प्रयोग होता है । प्रत्येक गण तीन वर्णोंका होता है । कुल गण* आठ हैं । उनके नाम, संक्षिप्त नाम, लक्षण, रूप और उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) मगण	म	तीनों वर्ण गुरु	५ ५ ५	अफ्रीका
(२) नगण	न	तीनों वर्ण लघु	। । ।	अरब

* (१) आदि मध्य अरु अन्तमें भ-ज-साके गुरु होय ।

य-र-ताके लघु होत है, म न गुरु, लघु, सब कोय ॥

(२) यमाताराजभान सलगम् ।

जो गण मालूम करना हो, उसका आदि अक्षर निकाल लो, फिर उसके आगेके दो अक्षर और ले लो । इन तीनों अक्षरोंका जो रूप होगा, वही उस गणका रूप होगा ; जैसे:—जगण मालूम करना हो, तो ज और आगेके दो अक्षर भी न लिए, जभान, हुआ तो जगणका रूप । ५ । होगा ।

(३)	भगण	भ	पहला वर्ण	गुरु	५ । ।	भारत
(४)	जगण	ज	बीचका वर्ण	गुरु	। ५ ।	अनाम
(५)	सगण	स	अन्तका वर्ण	गुरु	। । ५	इटली
(६)	यगण	य	पहला वर्ण	लघु	। ५ ५	कनाडा
(७)	रगण	र	बीचका वर्ण	लघु	५ । ५	एशिया
(८)	तगण	त	अन्तका वर्ण	लघु	५ ५ ।	जापान

नोट—म, न, ज, भ, स, य, र, त, ग, ल, ये पिंगल के दश वर्ण कहलाते हैं ।

यति और गति

छन्दको पढ़ते समय बीच-बीचमें ठहरना पड़ता है । इस ठहरनेको यति और ऐसे ठहरनेके स्थानोंको यतिका स्थान कहते हैं ; जैसे—

प्रियपति वह मेरा, प्राणधारा कहाँ है ?

यहाँ 'मेरा' के बाद कुछ ठहरना पड़ता है, अतः यहाँ यति है । चरणके अन्तमें यति हमेशा होती है ; परन्तु बीचमें यति बड़े-बड़े छन्दोंमें ही होती है । मन्दाक्रान्ता आदि छन्दोंके बीचमें दो-दो यति तक होती हैं । छन्दमें किसी शब्दको इस तरह नहीं रखना चाहिए कि यति उसके बीचमें पड़े । यह यतिभंग दोष माना जाता है ; पर रोला आदि मात्रिक छन्दोंमें कभी-कभी इसका ध्यान नहीं रखा जाता ।

छन्दके पढ़नेकी लयको गति कहते हैं । मात्राएँ ठीक होनेपर भी बिना गतिके छन्द नहीं बन सकता ; जैसे—

राम जबते ब्याहि घर आये

यहाँ पंक्ति १६ मात्राकी है, पर चौपाईकी भाँति पढ़ी नहीं जा सकती : अतः गति नहीं है और चौपाई भी नहीं है ।

मुख्य-मुख्य छन्दोंके नाम और लक्षण नीचे दिये जाते हैं:-

१ मात्रिक सम

१ चौपई

मात्रा—१५ । विशेषता—अन्त में ऽ ।

उदाहरण—

चहुहु जु साँचो निज कल्यान ।
तो सब मिलि भारत-सन्तान ॥
जपो निरन्तर एक जबान ।
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान ॥

२ चौबोला

मात्रा—१५ । विशेषता—अन्त में । ऽ

उदाहरण—

लेह राजा चितउर कहँ चले ।
छूटेउ सिंग मिरग खलभले ॥
फिर गोरा बादलसों कहा ।
गहन छूटि पुनि चाहै गहा ॥

३ चौपाई

मात्रा—१६—

जबतें राम ब्याहि घर आये ।
नित नव मंगल मोद बधाये ॥
भुवन चारिदस भूधर भारी ।
सुकृत मेघ बरसहि सुखकारी ॥

४ शृङ्गार

मात्रा—१६ । विशेषता—अन्तमें ऽ। (या । ऽ भी)

उदाहरण—

कहो हे प्रमुदित बिहगकुमारि,
कहाँसे आया है यह प्रिय गान ?
तुहिनवनमें छाई सुकुमारि,
तुम्हारी स्वर्णजाल-सी तान ।

५ पीयूषवर्ष

मात्रा—१६ । विशेषता अन्तमें । ५ या । । ।

उदाहरण—

है नदी दिन रात कलकल बह रही ।
बाँध धुन भरने सभी हैं भर रहे ॥
हर कलेजेमें अजब लहरें उठा ।
हरि गुनों का गान ये हैं कर रहे ॥

६ रोला

मात्रा—२४ । यति ११-१३

उदाहरण—

उदित कुमुदिनी-नाथ, हुए प्राचीमें ऐसे ।
सुधाकलश रत्नाकरसे उठता हो जैसे ॥
धीरे-धीरे उठे, नई आशा-से मनमें ।
क्रीड़ा करने लगे, स्वच्छ स्वच्छन्द गगनमें ॥

*

७ रूपमाला

मात्रा—२४ । यति—१४-१० । विशेषता—अन्तमें ५।

उदाहरण—

करत श्री भगवान गुरुजनको सदा सम्मान ।
वचन कहत विनीत यद्यपि, परम ज्ञान-निधान ॥
राजतेज लखात मुखपै, तदपि मृदु व्यवहार ।
हृदय परम सुशील कोमल, यदपि शूर अपार ॥

८ गीतिका

मात्रा—२६ । यति—१४-१२ । विशेषता—अन्तमें । ५ या । । ।

उदाहरण—

धर्मके मगमें अधर्मीसे कभी डरना नहीं ।

चेतकर चलना कुमारगमें कदम धरना नहीं ॥

शुद्ध भावोंमें भयानक भावना भरना नहीं ।

बुद्धि-वर्धक लेख लिखनेमें कमी करना नहीं ॥

९ हरिगीतिका

मात्रा—२८ । यति—१६-१२ । विशेषता—अन्तमें । ५ या । । ।

उदाहरण—

मानस-भवनमें आर्यजन जिसकी उतारें आरती ।

भगवान भारतवर्षमें गँजे हमारी भारती ॥

हो भद्रभावोद्भाविनी यह, भारती हे भगवते ।

सीतापते सीतापते गीतामते गीतामते ॥

१० सार

मात्रा—२८ । यति—१६-१२

मध्यनिशा, निर्मल निरञ्ज नभ, दिशा-विराग-विहीना ।

विलसित था अम्बरके ऊपर, अद्भुत एक नगीना ॥

उसकी विशद प्रभापर निर्भर, तृण लतिका द्रुमदलमें ।

करती थी विश्राम परम अभिराम निशोथ-कमलमें ॥

११ ताटक

मात्रा—३० । यति—१६-१४

उदाहरण—

चारु चंद्रकी चंचल किरणें खेल रही हैं जल-थलमें ।

स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अरुणि और अम्बरतलमें ॥

पुलक प्रकट करती है धरती, हरित तृणोंकी नोकोंसे ।

मानों भीम रहे हैं तरु भी, मंद पवनके झोंकोंसे ॥

१२ वीर (आल्हा)

मात्रा—३१ । यति—१६-१५

उदाहरण—

नहीं जानतीं हाथ हमारी माताएँ आमोद-प्रमोद ।
मिली हमें है कितनी कोमल, कितनी बड़ी प्रकृति की गोद ॥
इसी खेलको कहते हैं क्या विद्वज्जन जीवन-संग्राम ।
तो इसमें सुनाम कर लेना है कितना साधारण काम ॥

१३ सवाई

मात्रा—३२ । यति—१६-१६ । विशेषता—चौपाई का दूना,

उदाहरण—

एतभङ्ग पर कुसुमायुध आकर, करता है नव शक्ति संचरित ।
वनके रोम-रोमसे जैसे, हो उठता है हर्ष प्रस्फुटित ॥
वैसे ही वसन्तने आकर, जाग्रत किया नवल बल विक्रम ।
युवकोंमें नवीन आन्दोलन, नूतन आकर्षण नव उद्यम ॥

१४ प्रसाद

मात्रा—३२ । यति—१६-१६ । विशेषता—शृङ्गार का दूना,

उदाहरण—

हिमालयके आँगनमें उसे, प्रथम किरणोंका दे उपहार ।
उषाने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक हार ॥
जगे हम लगे जगाने विश्व, लोकमें फैला फिर आलोक ।
व्योम तम-पुञ्ज हुआ तब नाश, अखिल संसृति होउठी अशोक ॥

२ मात्रिक अर्द्धसम

१५ बरवै

मात्रा—विषमचरण १२, समचरण ७ ।

विशेषता—अन्त में ऽ ।

उदाहरण—

भज मन राम सियापति
 रघु कुल ईश
 दीनबन्धु दुख टारन
 को स ल धी श ॥

१६ दोहा

मात्रा—विषमचरण १३, समचरण ११ ।

विशेषता—अन्तमें ५।

उदाहरण—

मेरी भव बाधा हरहु
 राधा नागरि सोई ।
 जा तनकी भाई परे,
 स्याम हरित दुति होइ ।

१७ सोरठा

(दोहे का उल्टा)

उदाहरण—

सुनि केवट के बैन
 प्रेम लपेटे अटपटे ।
 बिहँसे करुनाऐन,
 चितै जानकी-लखन-तन ॥

१८ उल्लाजा

मात्रा—विषमचरण १५, समचरण १३ ।

उदाहरण—

इमि सब तीरथमय देवधुनि;
 धरि प्रयाग गोरव गह्वो ।
 मनु रुचिर राज्य अभिषेक हित
 सब-तीरथ-सुचि जल लह्यो ॥

११ रुचिरा

मान्ना—विषमचरण १४ = समचरण १३

विशेषता—ताटंकका आधा

उदाहरण—यह मेरी गोदीकी शोभा,
सुख-सुहागकी है जालों।
शाही शान भिखारिनकी है,
मनोकामना मतवालों ॥

३ मात्रिक विषम

२० कुण्डलिया

लक्षण—दोहा + रोला

विशेषता—दोहेके अन्तिम चरणकी आवृत्ति रोला के आदिमें
फिर की जाती है।

उदाहरण—ले पल एक सुगन्ध अलि, अपनी मानि न भूल।
लैहै साँझ सबेरमें, वह माली यह फूल ॥
वह माली यह फूल, किते दिन जोदत आयो।
फूले-फूले खेत, कली सब सोर मचायो ॥
बरनै दीनदयाल, लाल लखि फँसें न है छल।
लगी बागमें आग, भाग रे गंधहि लै पल ॥

२१ छप्पय

लक्षण—रोला + उल्लाहा

उदाहरण—

तरनि-तनूजा-तट तमाज तरुवर बहु छाये।
भुके कूलसों जल परसन हित मनहु सुहाये ॥
किधौं मुकुरमें लखत; उभकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि, परद-पावन फल-लोभा ॥

मनु आतप बारन तीरकों, सिमिट सबै छाये रहत ।
कै हरिसेवा हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत ॥

४ वर्णिक सम

१ मालिनी

वर्ण—१५ । यति—८-७ । गण—न न म य य ।

रूप—॥ ॥ SSS, |SS |SS

उदाहरण—

प्रियपति वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है ?
दुखजलनिधि डूबी का, सहारा कहाँ है ?
लखमुख जिसका मैं, आजलों जी सकी हूँ ।
वह हृदय हमारा, नैनतारा कहाँ है ?

२ मदिश सवैया

वर्ण—२२ । गण ७ भगण + १ गुरु ।

रूप—S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S

उदाहरण—

बिप्रनको पन जुद, जुवा दल साजि चढ़े गज बाजिनहीं ।
बैलको बानिज और कृसी, पन सूदको सेवन साजनहीं ॥
बिप्रनको पन है जु यही सुख-संपत्तिसों कछु काज नहीं ।
कै पढ़िबौ कै तपोधन है कन माँगत बाँभनै लाज नहीं ॥

नोट—इस उदाहरण में रेखाङ्कित वर्ण लघु पढ़े जायेंगे ।

३ मत्तगयंद सवैया

वर्ण—२२ । गण—७ भगण + २ गुरु ।

रूप—S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ SS

उदाहरण—

सीस पगा न झगा तनमें प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्राम ।
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानहुकी नहिं सामा ॥

द्वार खड़ी द्विज दुर्बल देखि रख्यो चक्रि सो बसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ॥

नोट:—इस उदाहरणमें रेखाङ्कित वर्ण लघु पढ़े जायँगे ।

४ आरत सवैया

वर्ण—२४ । गण—७ भगण + रगण ।

रूप—S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥ S॥

उदाहरण—

हूँ जै कनावड़ो बार हजारलों जौ हितू दीनदयाल सो पाइये ।
तीनहू लोकके ठाकुर हैं तिनके दरबार न जात लजाइये ।
मेरी कही जियमें धरिकै पिय और न भूजि प्रसंग चलाइये ।
औरके द्वारसों काज कहा पिय द्वारकानाथके द्वारे सिधाइये ॥

नोट—इस उदाहरणमें रेखाङ्कित वर्ण लघु पढ़े जायँगे ।

५ मनहरण कवित्त (घनाक्षरी)

वर्ण—३१ । यति—१६-१५ । विशेषता—गुरु-लघु का कोई नियम नहीं ।

उदाहरण—

नाच रहीं तरल तरंगे स्वच्छ सागरमें,
बोल रहे विविध बिहंग रम्य वनमें ।
छा रही निराली हरियाली मंजु मेदनीमें,
जग रही जगमग उषोति है गगनमें ॥
लोचन लुभाते हुए लोल वृंत-दोलपर,
फूल रहे फूलकर फूल पवन में ।
किस अनजाने जग-जीवनके स्वागतको,
उड़ रही सरस सुगंधि है पवनमें ॥

टिप्पणी

कबीर

माखी—ज्ञान-सम्बन्धी दोहे ।

१—८—सात समुंद—पुराणोंमें सात समुद्र माने गये हैं—लवण-सागर, इल्लु-सागर, सुरा-सागर, घृत सागर, दधि-सागर, दुग्ध सागर और मधु सागर । वनराइ (वनराजि)—वनश्रेणी । कुँडलि—नाभि-मण्डलमें । घटि-घटि—प्रत्येक हृदयमें । माई (स्वामी) परमात्मा । कस्तूरीके मिरग ज्यों—कस्तूरीमृगकी नाभिमें कस्तूरी रहती है, उसकी गन्धसे मस्त वह चारों ओर दूँदता फिरता है कि यह गन्ध कहाँ से आती है, उसे यह ज्ञान नहीं होता कि वह उसीकी नाभिमें है । सेमर(शाल्मली)—सेमल । मुअना—तोता, शुक । सेइथा—सेवन किया । देंडी—कपास आदि की डोडी । चटाक दें—चट् आवाजके साथ । सेमर मुअना इ०—सेमलके पेड़में गहरेलाल रंगका फूलोंका गुच्छा आता है और उसमें फलकी जगह डोडी रहती है ; गहरे रंगसे आकर्षित होकर मुग्गा आशा लगाये रहता है कि पकने पर बड़ा मीठा और रसीला फल मिलेगा ; पर उस डोडीके फूटनेपर उसमेंसे रसीले गूदेकी जगह रुई निकलती है । स्वातिबूँद—चातक स्वाति-नक्षत्रके दिन बरसा हुआ जल ही पीता है । बोरी—डुबोई ।

१०—११—करु इ०—अपनी भुजाओंका बल करो, अपना भरोसा रखो । बिरानी—पराई । बिलंबिये—आश्रय लीजिए ।

१३—१६—ईंधन इ०—सब युवा लोग कालके गालमें चले गये और अब तुम्हारी भी बारी निकट है । मेड़ियाँ—ऊँचे महल । उसारि—उठाकर ।

साढ़े तीन हत्थ—मरनेपर इतना ही स्थान आवश्यक होता है। सातों सबद—सप्त स्वर, संगीत। बैसन—बैठने। फिरावै—बदलता है। खुँदन—कुचला जाना। बाढ़—काटा जाना। करगस—वाण। ताइये—तपाइये। उलीचिये—हाथसे उठा-उटाकर बाहर फेंकिये। बेरि—बेरकी भाड़ी। पमावही—उन्मत्तालाप करता है। नूर—ज्योति—(कौन सच्चा वीर है और कीर्ति प्राप्त करता है)। मुखके माथे इ०—मिलावो—

दुखमें सुमिरन सब करैं सुखमें करै न कोइ।

जो सुखमें सुमिरन करैं दुख काहे को होइ ॥—(वृन्द कवि)

टि०—विशेष अध्ययनके लिए देखो—

१—कवीर-ग्रन्थावली (नागरी-प्रचारिणी सभा)। २ कवीर-वचनाली (ना० प्र० स०)। ३ कवीर-साखी संग्रह (बेलवेडियर प्रेस)। ४ कवीरका रहस्यवाद (प्रो० रामकुमार वर्मा)।

सूरदास

बाल-कृष्ण

१—७ पैयां—पाँवों पर। अनत—अन्यत्र। जैया—जाती है। गैया—गाय। तनक—(१) थोड़ा-सा (२) छोटा। चितै—देखते हैं। लवनी—नवनीत, माखन। खावावत—प्रतिबिम्बको बालक समझकर उसे खानेको देते हैं। बल—बलराम। गुहत—गूँथती है। ओंछत—पाँछती है, या कंधो करती है। नागिन-सी—चोटीको नागिनकी उपमा दी जाती है। भुइ लोटी—पृथ्वीपर फैली हुई, लम्बी। पचि-पचि—प्रयत्न कर-करके। गोड़—पैरमें। धरयौ—पकड़ लिया। हँकारि—पुकारकर। जानिकै इ०—श्रीकृष्णका कथन। कोहि—क्रोध। गोसैयाँ, स्वामी, राजा। कछु—कुछ बढ़कर। यातैं—इसलिए कि। रूहटि—(राजस्थानी रुँगत), खेलनेमें भूठ बोलना या भूटा व्यवहार करना। गैयाँ—सखा। ललकि—स्वेच्छासे। लावत पाप—

दोष लगाते हैं—भिरिक्यो—धमकाया । हरख इ०—अपनी शिकायतपर दूसरे बालकोंको डराड पाता देखकर बालकके मनमें स्वभावतः हर्ष होता है ।

८-१३—चाहत—देखते हुए । गोरस—दूध-दही । भाजत इ०—घरके बच्चोंपर मट्टा छिड़ककर भाग जाता है । ढीलत—बन्धन खोल देता है । बही—भटकती । कोसों—तुम्हे क्या भला-बुरा कहूँ । कन्यासों—कन्याको । मधुवन—मथुराके आसपास का वन । ख्याल—तमाशा (देखना चाहते हैं) कमरिया—कमली । खोरी—गली । भुरइ—भुला ली । तन—ओर । तेरे भाए—तेरे लिए । नेकु—कुछ भी ।

गोपी-विरह

१४-१८—अवधि—(आनेका) निर्धारित समय । कहियत है—कहा जाता है । पराये; अर्थात्—इन्द्रके । राँची—अनुरक्त । ये बतियाँ—ऊधोंका ज्ञानोपदेश, विरहाकुल गोपियोंको समझानेके लिए कृष्णने ऊधोंको भेजा, उन्होंने गोपियोंको ज्ञान-साधना करने और निराकार परमात्मामें ध्यान लगानेका उपदेश दिया; पर कृष्णप्रेमानुरक्त गोपियोंको वह उपदेश सुखा मालूम हुआ । अवधि इ०—अवधिके दिन गिनती हुईं और उनकी प्रतिज्ञा करती हुईं भी ये इतनी दुखी नहीं हुई थीं, जितनी अब तुम्हारे इन योगसाधनाके समाचारोंसे । दूखी—दुखी हुई । बारक—एक बार । वह मुख—कृष्णका वह मुख जिससे वे पत्तोंके दोनोंमें दूध दुहकर पीते थे, उसी प्रकार दोनोंसे दूध पीता हुआ उनका मुख । सकति इ०—ये नदियाँ सूखी हैं, तुम इनमें शक्तिपूर्वक (जबरदस्ती) हट करके नाव चलानेका प्रयत्न करते हो, सूखी नदीमें नाव प्रयत्न करने पर भी नहीं चल सकती, वैसे ही तुम्हारे योगोपदेश का हम पर कोई असर नहीं पड़ सकता । उहाँते—मथुरासे । जलहर—मेघ । किनारे—अलग होकर । अलिमुत—भ्रमर । जलमुत—कमल । संपुट—फूलोंके दलोंके बीचका खाली स्थान । सारंग—हरिण ।

अन्य पद

१६-२०—कमल—भगवान् । जहाजको पत्नी—बीच समुद्रमें बहते हुए जहाजका पत्नी उड़-उड़कर उसी जहाजपर लौट आता है ; क्योंकि ठहरनेको और कोई स्थान वहाँ नहीं मिलता । छेरी—बकरी । खेहि—धूल । छंग—(उत्संग) शरीरपर । पाहन पतित इ०—पत्थरपर चाहे जितने बाण मारो, वे पत्थर को बेध नहीं सकते । निखंग—तरकस ।

टि०—विशेष अध्ययन के लिए देखो—१ संचित सूरसागर (इण्डियन प्रेस) २. भ्रमरगीतसार (रामचन्द्र शुक्ल) ३. सूरपञ्चरत्न (लाला भगवानदीन) ४. सूरसुधा (मिश्रबंधु) ५. सूरसुप्रभा (ना० प्र० सभा) ।

मालिक मुहम्मद जायसी

गोराकी वीरगति

यह अवतरण पद्मावत काव्यमें से संचित करके लिया गया है । बादशाह अलाउद्दीनने चित्तौड़के राजा रतनसेनकी रानी पद्मावतीके सौंदर्यकी कथा सुनकर उसको पानेके लिए चित्तौड़ पर चढ़ाई की । जब बलसे प्राप्त न हो सकी, तो छलकी सूझी । बादशाहने राजाको कहलवाया कि मुझे एकबार पद्मावतीको दिखा दो, तो मैं लौट जाऊँगा । राजाने यह बात स्वीकार की । पद्मावतीको दिखानेके बाद राजा उसे पहुँचानेके लिए किलेके बाहरी दरवाजे तक चला आया । वहाँ बादशाहने उसे कैद कर लिया और किलेके भीतरवालोंसे कहला दिया कि पद्मावतीके मिलनेपर ही राजाको छोड़ा जा सकता है । गोरा रतनसेनका एक सरदार था । बादल इतिहास तथा जन-कथाओंमें गोराका भतीजा कहा गया है ; पर जायसीने 'बेटा' लिखा है । पद्मावतीने उनकी शरण ली । कवि जटमलने अपनी 'गोरा-बादलकी बात' नामक पुस्तकमें उनकी वीरताका अच्छा वर्णन किया है ।

१ - मतें—मंत्रणा करते हैं । कीज—कीजिए । परै भोरा—धोखा हो । सुविधि इ०—हितोपदेशकी प्रसिद्ध कथा । राजा—राजाके साथ । छुर साजा—छुर किया । चंडोल—विमान, पालकी । सँजोइलकै—सजाकर । कुँवर—राजपूत सरदार । बिवानू—पालकी । बैठ—बैठा, पद्मावतीकी पालकीमें उसकी जगह एक लुहार उसीका वेष बनाकर बिठाया गया । ओहार—पालकीका परदा । लाये—लगाये हुए । आई—आई हूँ । हों—मैं । स्यों—साथ । किल्ली—कुझी । चितउर इ०—चित्तौरकी कुझियाँ मेरे पास हैं । मंदिर—महल । इहाँ-उहाँ कर—लोक-परलोकका । कैलाम—शाही महल ।

२—छूँ छि—जो घड़ी ग्वाली थी उसे ईश्वरने फिर भरी अर्थात् बुरी घड़ी गई और अच्छी घड़ी फिर आई । छावा—भर गया । काटि बंदि—बंधन काटकर । जोहारू—प्रणाम । जम—जैसे ही । मिरिग—मुसलमान । साहि—अलाउद्दीन । गोहारी पृकार हुई । असूझ—जो दिखाई न दे । कारी—अन्धकार । गहन इ०—ग्रहण एक बार तो छूट गया, पर फिर ग्रहण लगना चाहता है । लोपत—छिपाता हुआ । गोइ—गेंद । जोरा—बल-प्रयोग, युद्ध । गोइ लेइ—विजय पाकर । अब्र इ०—अब्र मैदान और यही गेंद है । चाँगान—गेंद खेलनेका बल्ला । सौंह—सामने । हाल—हल्ला, हलचल ।

३ - अगमन—आगे आकर । आउ इ०—आयु पूरी कर ली और भोग ली । पूजी—पूरी हो गई, अन्त आ गया । समदि—मिलकर । पुरख—सेना के योद्धा । सुलतानी—सुलतानका । मसि—कालिमा । छपा—छिप गया, दिनमें ही ।

४—हाँका ललकारा । साका—बड़ा भारी वीर कार्य । ओनइ—उमड़ी । घटा—सेना रूपी मेघमाला । बगमेल—सवारों का पंक्तिबद्ध धावा, मुठभेड़ । गज-पेल—हाथियोंकी रेलपेल । सहसौ—हजारोंही ने अर्थात् सभीने । जूझकर—युद्धका (पहाड़-सा भार) । काँधा—कंधेपर ।

मोर—मोड़ते हैं । बाग—घोड़े की लगाम । अधर—आकाशमें । धर—धड़, कबंध । मारै इ०—कहा जाता है कि कबंध आकाश में लड़ते हैं । कंध—धड़ । निरारै—बिलकुल, यहाँ से यहाँ तक । रुधिर—रुधिर । रातें—लाल । माते—मस्त, खुर-खेह—खुरों की धूलि । भोगी इ०—भोगी सरदार लोग धूलमें भर गये मानो भोग छोड़कर उन्होंने योग धारण कर लिया । भारत—युद्ध । मेल—मुठभेड़ । निबरे—समाप्त हुए ।

५—देख—देखा । बूझा—समझा । सामुँह इ०—सामने युद्धकी मुठभेड़ की । ठया—ठट, समूह । घया बादलोंकी । करवारू—तलवार । टूटै—गिर पड़ता है । निनारे—अलग-अलग । माठ-मजीठ—मजीठके मटके, मजीठ का रंग लाल होता है । ढारे—बहा दिये हों । चाँचरि—चर्चरी, होलीका एक नाच । लावा—लगा दी धूका—झुका, टूटकर पड़ा । रुधिर-भभूका—अंगारे सा लाल । रतन—राजा रतनसेन । पदारथ—अर्थात् पद्मावती ।

६—छेंका—घेरा । टेका—पकड़ा । सिंह—सिंह जैसा वीर (गौरा) । मेला—रखा । धरावा—पकड़ाता । घिसियावा—घीसे, घसीटे । दीटी—दृष्टि, (सदा सामने ही देखता है) । मसि—कलंक । रात—निःकलंक, शुद्ध ।

७—सरजा—अलाउद्दीन का एक दैवीशक्ति-सम्पन्न सरदार । बाजा—भिड़ गया । बरियारू—बली । सांग—छोटा भाला । कादेस—जब सरजाने वापिस खींचकर निकाला । हुमकि—जोरसे । खसी—गिरी । रावन राव—राजाओंका राजा । तुरय—घोड़ा ।

८—भा परना—गिरना पड़ा । अंत इ०—अन्तमें तो गिरकर सिरपर धूल डालना ही है, मरनेके बाद शरीर मिट्टीमें ही मिलता है । सिघ—गौरा । सारदूल—चीता (सरजा) । घाऊ—गौराके खड्गका आघात । निहाऊ—मानो निहाई (एरन) पर पड़ा अर्थात् साँगको नहीं काट सका । डांडा—खड्ग । तस—वैसेही, जैसेकि । बाजा—

टकराया । गाजा—बिजली । हठि—जोरसे । सदूर—शार्दूल । लगी—मुठभेड़ । गाजा—बिजली । टाँठर—टठरी । फिरा संसार—आँखोंके सामने संसार न रहा, अन्धकार छा गया । सरग—स्वर्ग । नियराना—पास पहुँचा । स्यों—साथ । यान—विमान, देवताओंने गोराको स्वर्ग लानेके लिए विमान भेजा ।

नोट—विशेष अध्ययनके लिए देखो—नागरी-प्रचारिणी सभा काशी-द्वारा प्रकाशित रामचन्द्र शुक्ल-द्वारा सम्पादित 'जायसी-ग्रन्थावली' ।

गोस्वामी तुलसीदास

१ रामका वन-गमन

यह अवतरण रामचरितमानसके अयोध्याकांड से लिया गया है ।

१—५—रजायसु (राजादेश)—आज्ञा । जय-जीव—महाराज की जय हो । मुभछूँछो—शुभसे रहित (कैकेयी) । सरूप—सरोप । विगत—रहित । सतिभाऊ—सच्चे भाव से ।

६—१०—रहसी—प्रसन्न हुई । चौथेपन—वृद्धावस्था । मगह—मगध, जो अपवित्र देश समझा जाता है । अकनि (आकर्ण्य)—सुनकर । फनिक—साँप । पाग—सके । अवढर-दानी—मनकी मौजके अनुसार देनेवाला । दवारी—दावाग्नि जो वनमें बाँस इत्यादिके रगड़ खाने से लग जाती है । बजाई—जोरशोर से । दुराऊ—रहस्य । ज्वर—जलन । जनि—मत, कहीं न ।

१०—१५—नेहजलु—स्नेह के आँसू । अघाई—अन्तिम । स्त्रिय—लक्ष्मी । प्रमान—सत्य । करके—कड़के । जवास—एक पौदा जो वर्षा में जल जाता है । माँज—बरसात के नवीन जल का फेन । माँपी—पागल हो गई । साँप छलुन्दर केरी—साँप छलूँदरको देखने पर यदि न पकड़े, तो अन्धा हो जाता है और पकड़कर खा ले तो मर जाता है । निदानू—कारण । हरासू—व्याकुलता ।

१६-२४ — चरहिं—फिरते हैं । काऊ -- कभी । सुर-सर—मान-सरोवर । बनज—कमल । डावर—तलैया । गहन-सुधि—वनकी याद । अबाइ-उर—पेट भरकर । चकइहिं = रातमें प्रिय-वियोग होनेसे चाँदनी रात चकवीको बहुत बुरी लगती है, रातको चकवी-चकवा साथ नहीं रह सकते । बागी—पानी, आँसू । सहाई—सहायता । ताते—संतापदायक । सारा—निगरानी । मनोजतुराई - काम-शय्या । मौध - महल ।

२५-३४ — अवधि - वनवासकी । जनित—उत्पन्न हुआ । बाउ—हवा । श्रमकन—पशुने की बूँटें । डामी—बिछाकर । बिलगान—फटा । वचन-वियोग इ० — वास्तविक वियोग तो दूर रहा । अहिवात—सुहाग । तुहिन—पाला । तमरस—कमल । बादि बिआनी—व्यर्थ प्रसव किया । सुपासू—आराम । बागुर—जाल ।

२—राम-वनवास

यह अवतरण कवितावली से लिया गया है ।

१—कागर—पंख । बटाऊ - बटोही । जिसको मार्गमें टहरनेका स्थान छोड़ते हुए कुछ भी दुःख नहीं होता ।

२—नाम—नामने । अजाखुर इ० — बड़ा हुआ समुद्र भी बकरीके खुरके समान छोटा होता है । तटनी—नदी (यहाँ) गंगा । स्वै—वही (या अपनी क्योंकि गंगा उनके पैरोंमें उत्पन्न हुई है) ।

३ - ६ — थाह—गहराई । तरनी—नाव (जैसे पद-धूलिको छूकर शिला बनी हुई अहिल्या तर गई थी) । घरनी—गृहिणी । घर—घरमें । बरु—चाहे, भले ही । बन-बाहन—जलयान, नाव । जल इ० — जलमें भीगनेसे और भी कोमल हो गया । ओर—ओर देखकर । हहा—ठठाकर । पात इ० — पत्तल भर मछली मारकर निर्वाह करता हूँ । सहरी (शफरी) — मछली । वाहि लागि — इसीके सहारे (निर्वाह करता है) है । गौतम की घरनी—अहिल्या ।

६-१३—कनी जलकी—पसीनेकी बूँदें । परखो—प्रतीक्षा करो । भूभुगिडादे—जलती रेतसे जले हुए । मैन—मदन । त्रिधु-त्रैनी—चन्द्र-बदनी । अजानी—अज्ञान । रानी—कैकेयी । काज-अकाज—उचित-अनुचित कार्य । सुठि (सुट्ट)—सुन्दर । चितै—देखते हैं । त्यों—ओर । सोन—शोण, लाल । सत भायहुँते—सच्चे भावसे ।

३—चातक प्रेम-वर्णन

यह अवतरण दोहावलीसे लिया गया है ।

समय-सिर—समय पर । उदास—उदासीन रहे, न बरसे । मते—समझमें, सम्मतिमें । लटी—थक गई । रुचि—इच्छा । रंग—शोभा । नाप-जोख—(गहराईका) अनुमान । झरि—झड़ी । झकोर—तेज हवा । खरि—बड़ी । खीजि—क्रोध । रागहि—प्रेमसे ही । भूभाजन—पृथ्वी जितना बड़ा पात्र । दीनता इ०—दीन होकर दूसरे किसीसे याचना नहीं की । जाचक इ०—याचक जगत् भरका अहसानमन्द होता है ; पर चातक याचकने दाताको अहसानमन्द बना लिया (मेघका यश बढ़ाकर) । नाइ—झुकाकर । खोंच—खरोंच, दोष । मगपन्थी—यात्री । ऊख—ऊष्म, ऊष्ण । बतियाँ इ०—गर्मीसे व्याकुल होनेपर भी पेड़की छायामें आराम करना चातकको पसन्द न आया क्योंकि वह पेड़ स्वाति के अतिरिक्त जलसे सींचा गया है ।

टि०—विशेष अध्ययन के लिए देखो—१. गोस्वामी तुलसीदास (श्यामसुन्दरदास) । २. गोस्वामी तुलसीदास (रामचन्द्र शुक्ल) ३. रामचरितमानस, विनायकी टीका ४. मानसपीयूष (जानकीसुताशरण) ५. कवितावली (भगवानदीन) ६. कवितावली (चम्पाराम मिश्र, इंडियन-प्रेम ७. दोहावली (सरस्वती - भगडार, पटना) ८. दोहावली (भगवानदीन) ।

मीराँबाई

पद

१-४—वैजयन्ती—एक प्रकार की लम्बी माला । छुद्रचंटिका—
धुँधरुदार करधनी । कान्हो—कान्ह (कृष्ण) । बलवीर—बलराम । हीर—
हीरे । सीर—सिर । टोना—जादू । छोना—पुत्र । ले लेहु री इ०—गोपी
'देही ले लो' कहना भूलकर 'स्यामसलोना ले लो' कहने लगीं । छोई—
छाछ । मोई—मुझे ।

५-८—ओलगिया—प्रवासी, अर्थात् प्रियतम । भौका—भवमागरका ।
काया—शरीर । दुन्द—द्वन्द्व । न्हसाया—भाग गये । बार—देरी ।
जोर—जोरावर, प्रबल । अनन्त ऊँडी—अनन्त गहरी । बेड़ा—जहाज ।
चौसर—एक खेल । मँडी—बिछी । चोहटे—(संसार रूपी) बाजार में ।
मुरत—परमात्माकी याद । पासासार—चौसरके पासे और सार । बाज—
खेल । भावें—चाहे । जीवना—जीना । परसि—छूकर । त्रिविध—
आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक । इन्द्र इ०—इन्द्रकी पदवी पाई ।
मँट्यो—नापा । सिरीधरन—श्रीधारण करनेवाले । गौतम-धरन—गौतमकी
गृहिणी, अहिल्या । ग्रव—गर्व । धरन—पृथ्वी । उटजासी—उट जायँगे ।
देही—देह । जासी—जायगी । चहरकी बाजी—चिड़ियोंका खेल ।
पहरयाँ—पहनने से । पड्याँ—पड़नेपर । उलट—लौटकर । आसी—
आवेगा । जमकी फाँसी—यमयातना, बारम्बार जीवन-मरण का कष्ट ।

नोट—विशेष अध्ययनके लिए देखो—१. मीरा-मन्दाकिनी, नरोत्तम-
दास स्वामी द्वारा सम्पादित (यूनीवर्सिटो बुकडिपो, आगरा) । २. मीराके
पद (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग) ३. मीराकी प्रेमसाधना (भुवनेश्वरनाथ-
मिश्र) ४. मीरा-पदावली (विष्णुकुमारी मंजु) ।

नरोत्तमदास

सुदामा-चरित्र

यह अवतरण सुदामा-चरित्र-काव्य से संचित करके लिया गया है ।

१—संदीपनि—सांदीपन ऋषि जो कृष्ण और सुदामा के गुरु थे ।
 ३—सिद्ध करो—प्रस्थान करो (मुहावरा) । तिहूँ—पन—बाल, युवा और
 वृद्ध ये तीनों अवस्थाएँ । ५—कोदौ-सवाँ—दो निकृष्ट अन्न । ६. जक
 लगाना—बराबर एक ही बात कहना । बक—बकवाद । लड़ा—गाड़ी ।
 छानी—छुपर । ७. पित्रई—पितर । अग्रवई—पहलेसे ही । १०.
 कनावड़ो—अहसानमन्द । १४. खूँट—कोना, छोर । बाली—अनाजकी
 बाल । बूट—हरा चना । १५. आदि—है । लटी—जीर्ण-शीर्ण । सामा—
 सामान । १६. दुख सानै—दुखो हो । २०. गुरुमातु—गुरुकी पत्नी जिसे
 शिष्य माता कहते हैं । २१. अछोट—बड़ी । २२. कमला—लक्ष्मी, यहाँ
 रुक्मिणी । दुइ-लोक-बिहारी—दो लोकोंका स्वामी । २६. पठवति—बिदा
 करनेका ढंग । २६. ओढ़त—फैलाते । ३०. सकेलि—बटोरकर, सेंटकर ।
 ३२. संभ्रम—घबराहट, भ्रान्ति । कैधों—या तो । मभायो—छान डाला ।
 पूछि भे—पूछ चुके । ३३. चौपर—चतुष्पद । प्यादे—सिपाई । तोरहै—
 तोड़ डालेगा । ४४. टांटनी—टांटी । पावो—खाटका पाया । ताक—
 आलेपर । ३५. चामीकर—सोना । लाहु—लाम । वाहि—उसे अर्थात्
 स्त्रीको । लामी लूमी—लम्बी पूँछ । बनचारी—जंगलमें चरनेवाली । ३७.
 छूछी—भूषण-रहित । छाम—क्षीण । पामरो—रेशमी वस्त्र । ३८.
 सुगन्ध—सुगन्धित वस्तुएँ । पनही—जूता ।

टि०—विशेष अध्ययनके लिए देखो—सुदामा-चरित्र (लाला
 भगवानदीन-द्वारा सम्पादित) ।

बिहारीलाल

दोहे

ये दोहे बिहारी-सतसई से लिये गये हैं ।

१—२०—हरित दुति—हरे रंगकी कान्तिवाले या कान्तिहीन । वानक—रूप, वेश । तरहरि—नीचे । धरि—सोचकर । भजन—भजन करनेको । भज्यो—(१) भागा (२) भजन किया । कबूलि—स्वीकार कर । अएरि—अंगीकार करके । इन—ऐसी कटीली । वे—वैसे सुन्दर । कहलाने—सन्तप्त हुए, कान्त हुए । निदाघ—ग्रीष्म । अपत—पत्रहीन ! आत्र—शोभा, प्रतिष्ठा । गँवई—गँवार । ओड़—मिट्टी खोदनेवाली जाति । चहलैं परैं—कीचड़में पड़ते हैं । वैनै—नववय रूपी नदी । विरद बड़ाई—प्रशंसात्मक नामकी बड़ाई, बड़ा नाम । अरक—ओक, सूर्य ।

२१—४०—एकाएक हू—कोई एक सी । ब्यौसाइ (व्यवसायी)—उद्यम करनेवाला, सोचनेवाला । यहि जाल—संसार-रूपी । कुरंग—हरिण, मनुष्यसे अभिप्राय है (अन्योक्ति अलंकार) । औथरो—छिछली । बाइ—वापिका । चिनगी—साहित्यमें माना जाता है कि चकोर अँगारे खाता है । अनुरागी—प्रेमसे भरा लाल रंगका । बतरस—बातांका आनन्द । घटि—घटकर हैं । ए—यह, राधा । वृषभानुजा, (१) वृषभानुकी कन्या । (२) बैलकी छोटी बहिन (गाय) । वे—श्रीकृष्ण । हलधरके वीर—(१) बलरामके भाई, (२) बैलके भाई । जटे—जड़े हुए । बरिया—बेर, अवसर । करिया—कर्णधार । जग बाढ़—जगत्की हवा (प्रभाव) । विरद—प्रशंसा, बड़ाई । बलियै—बलिहारी हूँ ।

टि०—विशेष अध्ययनके लिए देखो—१. बिहारी-रत्नाकर (रत्नाकर) २. बिहारी-सतसई (भगवानदीन कृत टीका) । ३. बिहारी-सतसईकी भूमिका (पद्मसिंह शर्मा) । ४. संचित-बिहारी (इण्डियन प्रेस) ५. बिहारीकी वाग्विभूति (विश्वनाथप्रसाद मिश्र) ।

भूषण

शिवाजीकी प्रशंसा

ये छन्द शिवराजभूषण और शिवा-बावनीसे लिये गये हैं ।

१—जंभ—एक दैत्य, जो महिषासुरका पिता था और जिसको इन्द्रने मारा था, इसकी कथा मार्कण्डेय-पुराणमें है । बाइव—बड़वाग्नि, जो समुद्रमें रहती है और समुद्रके जलको सुखाया करती है । अंभ—पानी । बारिबाह—बादल । रतिनाह—काम । द्विजराज राम—परशुराम, जिन्होंने सहस्रार्जुनको मारा था । दावा—वनकी अग्नि । वितुण्ड—हाथी । मलिच्छ—यहाँ मुसलमानोंसे अभिप्राय है ।

२—गैरमिसिल—बे-तरतीब, अनुचित स्थान । बलकन—गरजने । तमक—तेजी, आवेश । नौरंग—औरंगजेब । सिपाही—सैनिक । (इस पद्यमें रौद्ररस है ।) ३. चकत्ता—चगतई वंशका औरंगजेब । दहसति—दहशत खाती है । करखति—खटकती । नारी—नाड़ी । हहरि—काँपकर । हवस—अबीसीनियाँ । भरकति—भड़कती, डरकर भागती — (भयानक रस) । ५. अपर—अपरान्त, बम्बई प्रान्त का दक्षिणी भाग । साम—सीरिया । ७. त्रिसात—बल चलता है, पाग पाते हो । बालम—बल्लभ, पति । आलम—संसारमें । आलमगीर—जगत्विजयी, औरंगजेबकी उपाधि । ८. मंदर—महल, पहाड़ । कन्दमूल—(१) मिठाई-विशेष, (२) पेड़ोंकी कंद और गट्टे । बेर—(१) बार, (२) फल-विशेष । भूखन—(१) भूषण, (२) भूख । विजन—(१) व्यजन (पंखा), (२) निर्जन वनमें । डुलाना—(१) झूलवाना, (२) घूमना । नगन—(१) रत्नोंसे, (२) नग्न । जड़ातीं—(१) जड़ित रहती थीं, (२) जाड़ा खाती हैं (यमक अलंकार) । ९. मेलास—मेलसा (ग्वालियर राज्यमें एक स्थान) । ऐन—ठीक । सिराज—शीराज (फारस) । फिरंगानो—यूरोपियनोंका मंडल । (भयानक रस) ।

१०—एदिल—बीजापुर-नरेश, आदिलशाह । सलाह—सन्धि । नाह—हे नाथ । ११—बोल गहे ना—कथन पर ध्यान नहीं दिया ।

परनालो—एक दुर्ग, पन्हाला । खवासखान—बीजापुरका एक सरदार ।
२२. अठपाव—शरारत । वीछू—बिछुआ नामक हथियार । १३. दिवाल—
मर्यादा । दुनी—दुनिया ।

छत्रसालकी प्रशंसा

ये पद्य छत्रसाल-दशकसे लिये गये हैं ।

तोम—समूह । प्रतिभट—शत्रुदलके योद्धा । कटीले—काटनेवाले,
चाँके । भुज-भुजगेस—भुज रूपी नागराज । चंपतराय—छत्रसालके पिता ।
पर-छोने—पर कटे । पर—शत्रु । बर—बल (यमक अलङ्कार) ।

टि०—विशेष अध्ययनके लिए देखो—१. भूषण-ग्रन्थावली
(मिश्रबन्धु), २. भूषणग्रन्थावली (रामनरेश त्रिपाठी), ३. भूषण-ग्रन्थावली
(विश्वनाथप्रसाद मिश्र इत्यादि), संक्षिप्त भूषण (शम्भुदयाल
सक्सेना) ।

भारतेन्दु हरिचन्द्र

यमुना-छवि-वर्णन

यह कविता चन्द्रावली नाटकसे ली गई है ।

१—६—तरनि-तनूजा—सूर्यकी कन्या, यमुना । नै रहे—भुक् रहे हैं ।
पाँति—पंक्ति । गोभा—अंकुर, कल्ले । उपमान—जिससे उपमा दी जाय,
समान । भाईं—भलक । कमला—लक्ष्मी । सात्विक—प्रेमजन्य रोमांच,
कंप आदि सात्विक भाव । सतधा—सैकड़ों रूपमें । राका—पूर्णमा ।
ओभा—छटा । गुड़ी—पतङ्ग । अवगाहना—नहाना । अविकल—पूर्ण ।
चकई—एक गोल खिलौना । निसिपति—चन्द्र । चिकुर—केश । सतगुन—
सत्त्वगुन, इसका रंग श्वेत माना गया है ।

टि०—विशेष अध्ययनके लिए देखो—१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
(श्यामसुन्दरदास), २. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (ब्रजरत्नदास) ३. भारतेन्दु-
नाटकावली (इण्डियन प्रेस) ।

श्रीधर पाठक

हिमालय-वर्णन

नागराज—पर्वतोंका राजा, हिमालय । श्वेत मुकुट—वर्षका मुकुट । सेत पीत स्याम धार—श्वेत गंगाकी, पीत सरस्वतीकी, स्याम जमुनाकी । त्रिगुण—सत्व, रजस् तमस् । त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश । त्रिजग—स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल । त्रिपुण्ड—तीन रेखाओंका तिलक । स्यामा—एक चिड़िया । हारीत—एक प्रकारका कबूतर । खेचर—पत्नी । भौगत—मँडराते हैं । हिम-संभव—वर्षका । गोमुख—गोमुखी, जहाँसे गंगा निकलती है । पंच-जल—पाँच नदियाँ । हृद्—भील । लगाई—तक । हृदयंगत—हृदयका । पर्वती—पर्वत-निवासिनी । तर—नीचे । नन्दन-वन—इन्द्रका उपवन ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

यशोदा-विलाप

यह अंश प्रिय-प्रवास मदाकाव्यसे लिया गया है । कंसके निमंत्रण पर श्रीकृष्ण मथुराको गये । यहाँ कंसको मारनेके पीछे वापिस नहीं आये । उनके न आनेसे माता यशोदा एवं गोप-गोपी जनोंको बड़ा दुःख हुआ । श्रीकृष्णने उनको समझानेके लिए अपने सखा उद्धवको भेजा । इसी कथाका वर्णन इस काव्यमें किया गया है । मथुरासे नन्द आदिके अकेले लौट आनेका हाल यशोदाको ज्ञात हुआ, तो उन्होंने बहुत विलाप किया । यही अंश यहाँ लिया गया है ।

१—१०—विजित-जरा—बुढ़ापे से अभिभूत । कुञ्चोंकी क्रिया—दुर्भाग्यके प्रभावको । कीलना—प्रभावको नष्ट करना । दिनकरशोभी—सूर्यकी-सी शोभावाला, सूर्य कमलोंको खिलता है, रात्रिका नाश करता है और विहंगोंको आनन्दित करता है । रामभ्राता—बलराम का भाई । निर्जरीं को—देवताओंको । विधाता—बनानेवाला ।

११—२०—निधि—खजाना । खनिमुपमा—शोभाकी खानि । नगर—मथुरा । सुफलक-सुत—अक्रूर, जो श्रीकृष्णको व्रजसे मथुरा ले गये थे । प्रियोको—वलराम और श्रीकृष्णसे तात्पर्य है, अतः बहुवचन है । उन्मोचनको—मिटानेको । मुरभि—गौ । वत्समें—वत्सोंमें होना चाहिए । नीप—कदंब । समुद्र—प्रसन्नतापूर्वक ।

२१—३२—लाल—लाल नामक मणि, और प्यारा पुत्र (श्लेष) । वर्धमाना है—बढ़ रही है । कटिपट—कमरका बन्ध पीताम्बर । तनपर ३०—श्रीकृष्णके शरीरका कान्ति नील अर्थात् श्यामवर्णकी थी । कोशला—धीश—दशरथ, जिन्होंने पुत्र श्रीरामके वन जाने ही वियोगमें प्राण छोड़ दिये । प्रियमणि ३०—कहते हैं कि साँपके मस्तकमें एक उज्ज्वल मणि होती है, जो उसे बहुत प्यारी होती है । लघुतर शफरी—छोटी-सी मछली । निर्ममोंसे—निर्मोही जैसे, मानों उनमें प्रेम है ही नहीं । क्षीणताधिक्यता—दुर्बलताकी अधिकता । अवगत—ज्ञात । खलेगी—अखरेगी ।

भेदकी बातें

यह अंश चोखे-चौपदे नामक ग्रन्थसे लिया गया है । यह बोलचाल की भाषामें लिखा गया है । इसमें मुहावरोंको लेकर सत् शिक्षाकी बातें कही गई हैं । मुहावरों और कहावतोंका प्रयोग बहुत ही सुन्दर हुआ है ।

उसी एककी—परमात्माकी । ए—ये अर्थात् चिड़ियाँ । वे—अर्थात् बेलें । उलही—उल्लसित, प्रस्फुटित, फूली हुई । लहलहाना—हरीभरी लहरानेवाली पंक्तियोंके युक्त होना, लहराना । समा—छटा । हरहर—(१) हवाकी आवाज (२) हरिहर । छिले—कुरेदकर दूर करे । सतबंधी—सैकड़ों धन्धोंवाली । साँसकी साँसत किये—प्रणायामका कष्ट करनेसे । नाकको दवाना—प्रणायाम करना । कंठमें ठाकुरका बाँधना—कई लोग ठाकुरकी मूर्ति गलेमें लटकाये रहते हैं । आँवला हथेलीका—सुगम वस्तु,

अच्छी तरह जान सकते योग्य । सूक्त पाया — समझमें आया ।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

यह अंश गङ्गावतरण नामक काव्यमें लिखा गया है । इसमें सगरका यज्ञ करना, कपिलके शापद्वारा सगर-पुत्रोंका नाश होना, भार्गवरथका गंगाको लानेके लिए तप करना, गंगाका पृथ्वी पर आना तथा समुद्र तक पहुँचना और सगर मुनोंका उद्धार करना आदि कथा है । यह काव्य ब्रज-भाषामें है । इसके वर्णन बहुत सजीव हैं । बीच-बीचमें प्राकृतिक वर्णन भी बहुत सुन्दर हैं ।

१ - १० — मोतिनसीं—उछलते हुए जलके बिन्दु मोतियोंका भाँति चमकते हैं । कर्मज कृपि—संचित कर्मरूपी स्वेती । चित्रगुप्त—चमराजके लेखक, जो प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंका लेखा करते हैं । देवधुनि—गंगा । पैड़—मार्ग । उपचार—सेवा-पूजा । प्रचरें—करती हैं । तरसें—जो तरस रहे थे । सहज—स्वाभाविक, जैसे सिंह और मृगका । कलिद—एक काला पहाड़, हाथियोंमें कलिन्दकी कल्पना की गई है । विलुलित—भूमती हुई । बालखिल्य—ऋषिविशेष, जो उल्टे लटककर तपस्या करते हैं । छ्राजे—शोभित । धुनि धुनत—शब्द करते हैं । परभृत कोयल। प्रतिहारी—द्वारपाल । घटक—गौरैया पक्षी ।

११—२१ - ज्योत्स्ना—चाँदनी । पटपर—पानीके आसपासकी जमीन, जो पानी चले जानेपर सूख जाती है । ऐपन—चावल और हल्दीको एक साथ पीसकर बनाया हुआ एक गीला माङ्गलिक द्रव्य । गोरुनि—गाय-बैलोंको । मुरत—मुड़ चलते हैं, (स्वर्गको) । पंचत्वप्राप्त—मृत । बावन वीर—बहादुर और चालाक । चौचन्द—ऊधम, शोरगुल । त्रिपथगा—गंगा । तीन-पाँच—हुजत । पाटित—भरती हुई । मदाव्रत-क्षेत्र—ऐसे स्थान जहाँ नित्य अन्न बाँटा जाता हो । पौन गौन है—पवन चलकर । आराम—वाटिकाएँ । धुनि भारत—बोलते हैं । विठौर—विठूर (कानपुरके

पास) दररति—पीसती हुई । भाऊ—एक छोटा भाइ ।

२१—२६—विरजा—गोलोककी एक नदी, विरजा राधाकी सखी थी । हरिप्रिया—यमुना । हरप्रिया—गंगा । गिरा—सरस्वती (नदी-विशेष) तरंगित—लहरें लेती हुई । चमर—गंगा-यमुनाकी लहरोंके । कछार—नदी के किनारेकी भूमि । अच्छयवट—अक्षयवट नामक बड़का पेड़ । सैत नील—गंगाकी धारा मानो श्वेत मेघ और यमुनाकी धारा मानो नील मेघ है । जुन्हाई—ज्योत्स्ना । जोहत—दर्शन करते हैं । जंगम—योगी विशेष । हँसत—इसलिए कि व्यर्थ इतना कष्ट उठाते हैं । तरनी—नाव । बन्दन—मिन्दूर । चायन—चावसे । बेनी—बेणी । जीवनमुक्त—जो जीते हुए ही मुक्त हो चुके हैं ऐसे महात्मा । छन्द-बन्ध—काव्य-रचना । मनु...लह्याँ—मानो प्रयागका राज्याभिषेक हो रहा है, राज्याभिषेकके लिए समस्त तीर्थों के जलकी आवश्यकता होती है, गंगाके आनेसे प्रयागको सब तीर्थोंका जल एक साथ मिल गया, क्योंकि गंगा सकल तीर्थ-रूपिणी है ।

रामचंद्र शुक्ल

भगवान् बुद्ध की हंस-रत्ना

यह ग्रंथ बुद्ध-चरित नामक काव्यके प्रथम सर्गसे लिया गया है, जो Edwin Arnold के Light of Asia नामक काव्यके आधार पर लिखा गया है ; पर है स्वतंत्र काव्य-सा । इस काव्यमें भगवान् बुद्धके हृदयकी कोमलताका दर्शन खूब हुआ है । स्थान-स्थान पर ग्रामीण प्रकृतिका वर्णन भी बहुत मनोहर है । इसकी भाषा ब्रज-भाषा है, जो बहुत ही मधुर एवं सुकोमल है ।

ठिठकना—एकाएक रुक जाना । गुनन—सोचने । मनमें आनि—मनमें लाकर । वयस्—अवस्था । पात द्वैतें—दो पत्तोंसे ।

नीड़ दिशिते—घोंसलेकी ओरसे उत्तर दिशाकी ओर जा रहे थे।
 सुर भरत—गान गाते हुए। कलरव—मनोहर शब्द। देवदत्त—बुद्धका
 चचेरा भाई। सो बैठ्यो—वह (बाण) पैठ गया। सिद्धार्थ—भगवान् बुद्ध।
 सहराय—सुहलाकर। दुख पाय—स्वयं दुखी होकर। एक सेवक—देवदत्त-
 का। विंधिकै—बाणसे विद्ध होकर। प्रसार करि—फैलाकर। टेरि—पुकार-
 कर। हेरि—देखकर, समझकर। तीर—पास। नृप—शाक्योंके अधिपति
 शुद्धोदन जो बुद्धके पिता थे। बधन—मारनेको। बार—प्रहार। बधिक—
 मारनेवाला। ब्याल—साँप। देवगण ब० बौद्धोंका एक विश्वास।

मैथिलीशरण गुप्त

पंचवटी में लक्ष्मण

यह अंश पंचवटी नामक खंडकाव्यसे लिया गया है। इस काव्यमें पंचवटीमें श्रीसीतारामकी पर्णकुटीके द्वारपर पहरा देते हुए लक्ष्मणके पास शूर्पणखाँका आना, उसका लक्ष्मणको अपना पति बनानेकी इच्छा प्रकट करना, श्रीराम और सीताका आना, अन्तमें शूर्पणखाँके नाक-कानका काटा जाना आदि कथाका वर्णन है। कविताकी दृष्टिसे यह उच्चकोटिका काव्य है। भावोंकी पवित्रता इतनी है कि पढ़कर ऐसा ज्ञात होता है कि मानो किसी पवित्र आश्रममें विचरण कर रहे हैं। वर्णन सर्वथा स्वाभाविक और भाषाका माधुर्य अनुपम है।

१-१०—पुलक...नोकों से—पृथ्वी भी पुलकित हो रही है; पुलकित होनेपर रोमांच हो जाते हैं, पृथ्वी पर हरी-हरी घासकी नोंकें खड़ी हुई हैं, मानो वे ही पृथ्वीके रोमांच हैं। भीमना—भूमना। निर्भीक—निडर। कुसुमायुध—कामदेव। तीन लोक की लक्ष्मी—सीता। निस्तब्ध—शान्त। स्वच्छन्द—इच्छानुसार चलनेवाला। गन्धवह—वायु। कलाप—समूह। मोती—तारे रूपी। निजको ही न देख सकती—अत्मग्लानिके कारण।

११-२०—राजमातृत्व—राजमाता होना । विश्वानुकूल्य—विश्वका प्रेम । स्वयमपि—स्वयं ही । पशुताका आरोप करते हैं—पशु कहते हैं । निसर्ग—प्रकृति । तान लेना—गाना । लहकते हैं—भोंके लेते हैं ; लपकते हैं । वैतालिक—स्तुतिपाठ करनेवाले । केकी—मोर । भिरती—भरती है । जितने मिला—जो जीवन में जितना कष्ट उठाते हैं, वे उतना ही गौरव प्राप्त करते हैं (रूपक अलंकार) । अत्र-तत्र—यहाँ-वहाँ । पुण्य—पवित्र ।

२१-२८—गुह, निपाद । शबर—भील आदि जंगली जानियाँ । व्यजन—पंखा । प्रयोजन—काम । आयोजन—तैयारियाँ । मनःप्रसाद—मानसिक आनन्द । भाभीका—सीताका (कुटीमें होनेपर भी) । मँभली माँका—कैकेयीका (महलोंमें होनेपर भी) । निराना—घामपात दूर करना । सांसारिकता—सांसारिक जीवन । निस्पृहता—निलोभिता । अत्रि और अनुसूया—एक ऋषिदम्पति, जो दण्डकारण्यमें रहते थे । पुण्य-गृहता—पवित्र गृहस्थी । कृत्रिमता—बनावट, दिखावा । अधिष्ठात्री—स्वामिनी, संचालिका, शासिका । विकृति—विकार, खराबी । प्रत्यक्ष—प्रेमीकी कुशल मानो प्रेमीके सामने रहनेमें ही रहती है, दूर रहनेमें नहीं । सहन-शक्ति—वह शक्ति, जिसके कारण बाधाएँ होनेपर भी उनका ज्ञान नहीं होता । मुनम करना—विजय प्राप्त करके यश-लाभ करना ।

जयशङ्कर 'प्रसाद'

चित्रकूटमें श्रीराम

यह कविता कानन-कुसुम नामक कविता-संग्रह से ली गई है ।

१-५—सन्ध्या समय चन्द्रोदयका वर्णन है । प्राची—पूर्वदिशा (उपमा अलंकार) । मंदाकिनी—चित्रकूटके पास बहनेवाली एक नदी । सरल-विलोकन—सीताकी सरल चितवन मृगीकी चितवनसे भी सुन्दर थी ; इसलिए मानो मृगी वहाँ सरल चितवन की शिक्षा ले रही थी । निर्वासित—देशसे निकले हुए, वनवासी । चन्द्रातप—चँदोवा, चाँदनी । सोम—चन्द्रमा । स्रोत—धारा । बिछावा—बिछावनकी

भाँति बिछा हुआ था। अली—भ्रमर। रोकना पड़ा—राज-सभामें जब कोई बोल उठता है, तो दूसरा व्यक्ति या पहरदार उसे चुप कर देता है।

टि०—पद्य ३-४ व ५ में सांग रूपक अलंकार है; श्रीरामको राजा बनाया गया है और राजदरबार का वर्णन किया है।

६—१०—ज्यों—मानो। मलयानिल—मलय से आती हुई हवा, मलय दक्षिणमें एक पहाड़ है, जहाँ चन्दन बहुत होता है, वहाँसे आनेवाली हवा शीतल और सुगन्धित होती है। कामद—कामनाओंको देने; अर्थात्—पूरी करनेवाला। स्वर्गंगा—स्वर्गकी गंगा, जानकीके मुखको स्वर्गकी गंगाका कमल कहा गया है। काननको मिला—यहाँ वनमें आया। नील मधुप—काला भ्रमर यहाँ श्रीरामचन्द्र (रूपकातिशयोक्ति अलंकार)। सुरभिपूर्ण—आमोदित। अंतःपुर—महल (जिसमें सोती रहती थी) रेणु—यहाँ पुल्लिंग में प्रयुक्त हुआ है। विभव—वैभव।

भारत-गीत

यह अंश स्कन्दगुप्त नाटकसे लिया गया है। इसमें प्राचीन भारतकी महिमाका बड़ा ओजपूर्ण वर्णन है।

१—२—हिमालयके आँगनमें—आर्यावर्त्तमें। प्रथमकिरण—प्रथम-ज्ञान (आर्यावर्त्तमें सबसे पहले ज्ञानका और सभ्यताका उदय हुआ) आलोक—प्रकाश (ज्ञानका)। मंश्रुति—संसार। अशोक—शोक-रहित। वाणी—सरस्वती। सप्तस्वर-संगीतके सात स्वर होते हैं—पङ्क, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत् और निषाद, इनके चिह्न सा रे ग म प ध नि हैं। सप्तसिंधु—सात नदियोंवाला देश (पंजाबके आसपासका भाग) जिसे पारसी हफ्तहिंद कहते थे और जिससे हिन्द शब्द बना है; आर्यलोग सबसे पहिले यहीं रहते थे। साम-संगीत—सामवेद का गान। बचाकर इ०—वैदिककालके अन्तमें यहाँ बड़ा प्रलय आया, उस समय केवल मनु अपनी नौकापर बच गये थे, उन्हींसे पुनः मानव-सृष्टि हुई। अरुणकेतन—लाल झंडा। वरुणपथ—समद्र।

३—दधोचि—एक ऋषि थे; एक समय वृत्रासुर नामक असुर देव-ताओं को बहुत सता रहा था और वह केवल दधोचिकी हड्डियोंसे बनाये हुए शस्त्र द्वारा ही मर सकता था; इस परम त्यागी महर्षिने परोपकारके लिए प्राण छोड़ना स्वीकार किया। उनकी हड्डियोंमें वज्र बना गया, जिससे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा। पुरंदर—इन्द्र। पविसे—वज्र द्वारा, अमिट रूपसे। अस्थियुग—मानवी सभ्यताका अत्यन्त प्राचीनकाल। एक निर्वासित—वनवासी श्रीरामचन्द्रका सिन्धुके समान विस्तीर्ण और गम्भीर उत्साह आज भी भारत और लंकाद्वीपके बीचकी टूटी-फूटी राहके रूपमें दिखाई देता है; उन्होंने अपने महान् उत्साहसे समुद्रपर पुल बाँध लिया था, जिसका कुछ अंश अभी तक कायम है; भारत और लंकाके बीचमें कुछ उठा हुआ जलमें डूबा हुआ भू-भाग है, जिसे आदमका पुल भी कहते हैं, वह श्रीरामके बनाये हुए पुलका शेषांश है।

४—धर्मका.....कर दी वंद—धर्मके नामपर जो पशुवलि हुआ करती थी, उसको एक भारतवासीने ही वन्द करवाया। विक्रमके कोई ५६८ वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था। उन्होंने दया और अहिंसाका धर्म चलाया था, जो बौद्ध धर्म कहलाता है। करुणा और प्रेम उसके मुख्य आधार थे। उन्होंने हिंसाका घोर विरोध किया, जिससे पशुहिंसा भारतवर्षसे कुछ कालके लिए उठ गई। शांतिमंदेश - भगवान् बुद्ध एवं महावीरने प्रेम और करुणाका संदेश सुनाया। लाहेकी—तलवारकी। धर्मकी विजय—सम्राट् अशोक बड़े भारी सम्राट् थे, उन्होंने बौद्ध धर्मका प्रचार कर संसारपर धार्मिक विजय प्राप्त की। भिन्नु इ०—अशोककुमार, महेन्द्र, कनिष्क इत्यादि। दया इ०—बौद्धभिन्नु घर-घर जाकर दयाका उपदेश देते और दयाका वर्त्ताव करते थे।

५-७—यवन यूनानी (अशोकने यवनोंके देशमें चिकित्सालय आदि स्थापित करके अपने दयाभावका परिचय दिया था)। चीन—चीनमें भी बौद्ध भिन्नुओंने धर्मका उपदेश दिया था। स्वर्ण-भूमि—

ब्रह्मदेश । रत्न-सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र, ये तीन बौद्धधर्मके सिद्धांत हैं । सिंहल—लंकाद्वीप । शील—पवित्र, सदाचारपूर्ण व्यवहार । पृत—पवित्र । सम्पन्न प्राप्त (या सम्पत्ति के साथ) । विपन्न—विपत्ति-ग्रस्त । संचयमें था दान—धनका संचय करते थे, तो दान भी करते थे ।

रामनेश त्रिपाठी

स्वदेश-प्रेम

यह अंश स्वप्न काव्यके पंचम सर्गसे लिया गया है ।

१—जिनके—हमारे पूर्वज भारतीय वीरोंके । २. सर्वोच्च मुकुट—हिमालय-रूपी । अविरल—निरंतर । सत्यरूप—सच्चा । धड़कन—हृदयका स्पंदन । शत्रुंजय—शत्रुको जीतनेवाले । ७. नव-जीवन—नवीन जीवन । संवल—यात्राके समय मार्गमें खाने-पीनेका सामान, पाथेय । कातर—व्याकुल । फिर नूतन धारण करता है इ०—मिलाओ—

वासंसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

(गीता)

८—तृति इ०—आत्म-बलिदान करनेसे ही जो तृप्त हो । आत्माके विकाससे पहले आत्माका विकास होता है, जिससे मनुष्यताका विकास होता है ।

गोपालशरणसिंह

इनके ये पद्य माधवी नामक संग्रहसे लिये गये हैं ।

आगमन

वस्त्र—विविध रंगके फूल ग्विले हैं, मानो उन्होंने नाना रंगोंके वस्त्र पहन रखे हैं । परिधान—वेप, वस्त्र । लोल—चंचल । लुटाता है—वायु फूलोंकी सुगन्धि लेकर चारों ओर बिखरा रहा है ।

स्वागत

वृन्त — डंटी, गुच्छा । ढोल — झूला । फूलना — (१) दर्पित होना
(२) ग्विलना । जग-जीवन — जगतका जीवन परमात्मा ।

वह लुवि

वह - अर्थात् ईश्वरीय । जुन्हाई — ज्योत्स्ना, शरदकी चाँदनी बहुत
निर्मल और उज्ज्वल होती है । गुनगुन — गुनगुन शब्द करने हुए ।
दीव्यमान — जलता हुआ । बाँकी शानदार । सुवर्णता — सुन्दर वर्ण ।
लुनाई — लावण्य ।

सियारामशरण गुप्त

यह कविता आर्द्रा नामक संग्रहसे ली गई है ।

१ — उद्वेलित करना — बाँध तोड़कर बहना । हृदय-चिताएँ धधकाकर—
दुःख सन्तापसे हृदयको जलाकर । क्षीणकंठ — रोते-रोते जिनके कंठ धँट
गये । मृगवत्सा — जिनकी सन्तान मर चुकी है ऐसी माताएँ । दुर्दान्त —
अदम्य । नितान्त — अव्यन्त । कृश ख — रोनेका शब्द जो कंठ क्षीण
होनेसे धीमा पड़ गया था । हाहाकार — हाय हाय शब्द ।

२ — अशान्त — शांत न होनेवाला, एवं हृदयकी शांतिको नाश
करनेवाला । भरे हुए, इ० — रोनेका शब्द यद्यपि क्षीण था : पर हाय हाय
कम न थी. उनमें महान् और शांत न होनेवाले शोक का व्यंजक हाहाकार
विद्यमान था ।

३ नव नव उपाय की चिन्ता में — फूल लानेके नये नये उपाय
सोचता हुआ । प्रभात मजग — प्रभात जो प्राणियोंको जगाकर कार्यप्रवृत्त
करता है । अलस दोपहरी — दोपहरका समय जब प्राणियोंमें आलस्यका
संचार होता है । स्वर्णधन — सन्ध्याकालीन बादल जो डूबते हुए सूर्यकी
किरणोंसे लाल-पीले रँग जाते हैं और सोनेके रंगके से मालूम होते हैं ।
गहरी — काली । जलते-से अंगारों से — तारे जो शोकाकुल होनेके कारण
अंगारे जैसे जान पड़ते थे ।

४ — शिव — शिवा — दुर्गाका नाम है । अप्रत — अपवित्र । श्रीमंदिर —
आदरार्थ श्री शब्दका प्रयोग हुआ है । सागर — शोकका । अक्षयताका

पट्टा ३०—क्या अक्षय ही बनी रहेगी, बीतेगी नहीं। अरुण-आभा - अरुणोदय, सूर्यका प्रथम प्रकाश। विकृति—परिवर्तन।

५—छाया—प्रभाव। इष्ट है—करना चाहता हूँ। हलका—शोक-भारसे रहित, कुल प्रसन्न। अरुण-राग—अरुणोदयका लाल प्रकाश। रंजित—रँगा हुआ। अशुचि—अपवित्रताकी। लग्न—लगी हुई। मुद-मग्न—प्रसन्न। अक्षम—असमर्थ।

५—स्वर्णकलश ३०—सोनेके कलशों पर सूर्यकी किरणें पड़नेसे वे चमक रहे थे, मानो कमल सूर्य-किरणोंको पाकर खिल उठे हों। समुदित—उगा हुआ, प्रसन्न। उपकरण—सामग्री। मुखरित—उत्सव में मूढ़ शोर-गुल हो रहा था, जो सर्वत्र गूँज रहा था। ठिकला—बिना प्रयत्नके स्वयं बढ़ चला। गरिमा—महत्त्व, क्या देवीकी महिमा इतनी महान् नहीं है कि उससे मेरा कलुष दूर हो जाय? क्या मेरी अपवित्रता इतनी महान् है कि देवीमें भी उसको दूर करनेकी शक्ति नहीं? रीती—खाली हुई, आसू-बन्द नहीं हुए। तनुपञ्जर—क्षीण-शरीर।

सुमित्रानन्दन पन्त

बादल

यह कविता पल्लव नामक पुस्तक से संचित करके उद्धृत की गई है।

जगत्प्राण—वायु जो जगत्का प्राण है। शिखी—मयूर। नृत्य—नृत्यके कारण रूप। दिनकर—सूर्य। चल—चंचल। विपुल ३०—विभुवन की विपुल कल्पनाके समान हम। अनंत आकाश।

मत्त मतंगज—मत्त हाथी बने हुए। सजग शशक—चौकन्ने खरगोश, बने हुए। प्रकटी—प्रकट करके, दिखाकर। सीपके—सीप जैसे उज्ज्वल। ज्योत्स्ना—चन्द्रिका। समुद्र—सानंद। कर—किरणें। उपल—ओले। रजत-कर—चाँदीके समान उज्ज्वल किरण और हाथ। दमयन्ती स्वर्णहंस—एक स्वर्णरंगी हंसने दमयन्तीकी नलका सन्देश सुनाया था। तमाल-तम ३०—अन्धकार रूपी तमाल-वृक्षके पत्तोंके समान। बाल-हंस—प्रातःकालीन

सूर्य । स्वर्णपंखोंसे—प्रातःकालीन सूर्यकी ललाई से रंजित, अतः मोनेकेसे रंगवाले होकर । धीरे इ०—संशयका उदय मनमें धीरे-धीरे होता है, इसका एक सुन्दर उदाहरण साकेत सर्ग २ में देखो, जहाँ कैकेयीके मनमें संशय उठता है, जो धीरे-धीरे दृढ़ होता है । अछोर—छोररहित । फैल—जैसे पंख फैल जाते हैं, वैसे ही इधर-उधर फैलकर । निशिभोर—रात और प्रभातमें । लटक—चिन्तामें माथा लटक जाता है । घोष-भरे—शब्द करने हुए । विप्लव-भय—राज्यक्रान्ति-जनित भय, जो शीघ्र चारों ओर प्रसरित हो जाता है । साकार—साक्षात् यह कालचक्रका विशेषण है । कालचक्र—जो सदा नीचे-ऊपर आता-जाता रहता है । जलधर—मेघरूपमें । जल-धार—जलकी धाराके रूपमें (बरसने लगते हैं) । हवामें महल बनाकर—(१) वायु-मंडलमें अनेक महलोंकीसी आकृतियाँ बनाकर (२) बड़े-बड़े मनोरथ बाँधते हुए । विभव-भूति-से—वैभव सम्पत्तिके तुल्य, जिसमें सात्त्विक दृष्टिसे कुछ भी सार नहीं होता ।

सुभद्राकुमारी चौहान

इनकी तीनों कविताएँ मुकुल नामक संग्रहमें ली गई हैं ।

बालिकाका परिचय

शाही—राजसी । कमलभृङ्गकी—रात्रिके समय कमलमें बन्द हुए भ्रमरको कमल खिलाकर बाहर निकालनेवाली, उषा-कालमें कमल खिलने लगते हैं । नीरस—निरानन्द । नाटिका—छोटा नाटक । कात्रा—मुसल-मानोंका तीर्थ-स्थान । घट-घट-वासी—परमात्मा । क्रीड़ा—बालक्रीड़ा । कौशिल्याके मातृ-मोदको—बालक श्रीरामकी क्रीड़ाओंको देखकर माता कौशिल्याके हृदयमें जो आनन्द उमड़ आता था उसे । नवी—पैगम्बर । विश्वास—(अँग्रेजी Faith) । जिन—इंद्रियोंका जीतनेवाला ; बौद्ध या जैन महात्मा, महावीरस्वामी । गौतम—बुद्ध ।

यदि आप हिन्दी-साहित्य और उसके सेवकों के संबंध में
अच्छी जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं

तो

मातृभाषा के पुजारी

अवश्य पढ़िए !

लेखक

श्रीयुत प्रेमनारायण टण्डन एम० ए०, विशारद

और

साहित्यरत्न श्री लक्ष्मीनारायण टण्डन, एम० ए०

इस पुस्तक में सुयोग्य लेखकों ने तीस साहित्य-सेवकों (दस प्रमुख गद्य-लेखकों और बीस प्रसिद्ध कवियों) का विस्तृत परिचय दिया है । साथ ही पाँच अन्य आवश्यक विषयों पर—‘शैली क्या है’, ‘कहानी-लेखक की दृष्टि से प्रेमचन्द और प्रसाद’, ‘कवि की दृष्टि से सूर-तुलसी’, ‘गुप्त-हरिऔध’ और ‘प्रसाद-पन्त’ की—गम्भीर और आलोचनात्मक तुलना करते हुए विवेचनात्मक प्रकाश डाला गया है । पृष्ठ-संख्या १६०, चित्र-संख्या २०, मूल्य । १)

मिलने का पता—

गयाप्रसाद एण्ड सन्स

शफाखाना रोड, आगरा

छात्रों, नवसिखिए लेखकों और कवियों के लिए

दो उत्तमोत्तम पुस्तकें

१-हिन्दी-रचना

लेखक—श्रीयुत कामेश्वरनाथ, एम० ए०

इस पुस्तक के लेखक एक सुयोग्य पत्रकार हैं। पहले आप 'ब्रज-भूमि' का सम्पादन करते रहे, अब लखनऊ से 'आकाश-वाणी' निकाल रहे हैं। इस पुस्तक में आपने लेखक और कवि बनने के इच्छुकों को सरल सुबोध भाषा में—वाक्य-रचना किस प्रकार करनी चाहिए? भाषा कैसी होनी चाहिए? आदि बातें हृदयंगम कराने की चेष्टा की है। मूल्य १)

२-रचना-रत्नावली

लेखक—श्रीयुत गोकुलचन्द्र शर्मा, एम० ए०

शर्माजी हिन्दी-संसार में निबंध-लेखन के लिए काफी प्रसिद्ध हैं। आपकी लिखी कितनी ही पुस्तकें कोर्स में रखी गई हैं। इस पुस्तक में आपने निबंध-रचना-सम्बन्धी सभी बातें उदाहरण सहित तथा स्वानुभूत उपायों द्वारा रचना-प्रेमियों को समझाने की कोशिश की है। मूल्य १।)

कम-से-कम ऐसे लोगों को, जो यह चाहते हैं कि हमें कुछ लिखना आ जाय, ये दोनों पुस्तकें अवश्य अपने पास रखनी चाहिए।

मिलने का पता—

गयाप्रसाद एंड संस

शफाखाना रोड, आगरा।

